॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथर्ववेदीय

त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

पूर्वकाण्ड

प्रथम अध्याय

पाद-चतुष्टयके स्वरूपका निर्णय

परमतत्त्वके रहस्यको जाननेकी इच्छासे श्रीब्रह्माजीने देवताओंके वर्षोंसे सहस्र वर्षोंतक तपस्या की। सहस्र देववर्ष व्यतीत होनेपर ब्रह्माजीकी अत्यन्त उग्र एवं तीव्र तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् महाविष्णु प्रकट हुए। ब्रह्माजीने उनसे कहा—'भगवन्! मुझे परमतत्त्वका रहस्य बतलाइये; क्योंकि परमतत्त्वके रहस्यको बतलानेवाले एकमात्र आप ही हैं, दूसरा कोई नहीं है। यह किस प्रकार? (यदि आप यह पूछें तो) वही बतलाता हूँ। आप ही सर्वज्ञ हैं। आप ही सर्वशक्तिमान् हैं। आप ही सबके आधार हैं। आप ही सब कुछ बने हुए हैं। आप ही सबके स्वामी हैं। आप ही समस्त कार्योंके प्रवर्तक हैं। आप ही सबके पालनकर्ता हैं। आप ही सबके निवर्तक (विनाशक) हैं। आप ही सत् एवं असत्स्वरूप हैं। आप ही सत् एवं असत्से विलक्षण हैं। आप ही भीतर और बाहर—सर्वत्र व्यापक हैं। आप ही अत्यन्त सूक्ष्मतर हैं। आप ही महान्से भी अत्यन्त महान् हैं। आप ही सबकी मूल-अविद्याके विनाशक हैं। आप ही अविद्यामें विहार करनेवाले भी हैं। आप ही अविद्याको धारण करनेवाले अधिष्ठान हैं। आप ही विद्या (ज्ञान)-द्वारा जाने जाते हैं। आप ही विद्यास्वरूप हैं। आप ही विद्यासे परे भी हैं। आप ही समस्त कारणोंके कारण हैं। आप ही समस्त कारणोंकी समष्टि (समुदाय) हैं। आप ही समस्त कारणोंकी व्यष्टि (पृथक्-पृथक् कारण) हैं। आप ही अखण्ड आनन्दरूप हैं। आप ही पूर्णानन्द हैं। आप ही निरतिशय आनन्दस्वरूप हैं। आप ही तुरीय-तुरीय (तुरीयावस्थाके तुरीय) हैं। आप ही तुरीयातीत हैं। अनन्त उपनिषदोंद्वारा आप ही अन्वेषणीय हैं। निखिल शास्त्रोंके द्वारा आप ही ढूँढ़नेयोग्य हैं। आप ही ब्रह्मा (मैं), शंकरजी, इन्द्र आदि सब देवताओं तथा समस्त तन्त्रशास्त्रोंद्वारा अन्वेषण करनेयोग्य हैं। सभी मुमुक्षुओंद्वारा आप ही ढूँढ़े जानेयोग्य हैं। सभी अमृतमय (मुक्त) पुरुषोंद्वारा आप ही खोजनेयोग्य हैं। आप ही अमृतमय हैं, आप ही अमृतमय हैं, आप ही अमृतमय हैं। आप ही सर्वरूप हैं, आप ही सर्वरूप हैं, आप ही सर्वरूप हैं। आप ही मोक्षस्वरूप हैं, आप ही मोक्षदाता हैं तथा मोक्षके सम्पूर्ण साधनस्वरूप भी आप ही हैं। आपके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आपके अतिरिक्त जो कुछ भी प्रतीत होता है, वह सब (बुद्धिद्वारा) बाधित (अतत्त्व—मिथ्या) है—यह निश्चित है। इसलिये आप ही वक्ता हैं, आप ही गुरु हैं, आप ही पिता हैं, आप ही सबके नियन्ता हैं, आप ही सर्वस्वरूप हैं और आप ही सदा ध्यान करनेयोग्य हैं—यह सुनिश्चित है'॥ १॥

परमतत्त्वज्ञ भगवान् महाविष्णु 'साधु-साधु' कहकर

प्रशंसा करते हुए (साधुवाद देते हुए) अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्रह्माजीसे बोले—"सम्पूर्ण परमतत्त्वका रहस्य तुम्हें बतलाता हूँ। सावधान होकर सुनो। ब्रह्माजी! अथर्ववेदकी देवदर्शी नामक शाखामें परमतत्त्वरहस्य नामक अथर्ववेदीय महानारायणोपनिषद्में प्राचीन कालसे गुरु-शिष्य-संवाद अत्यन्त सुप्रसिद्ध होनेसे सर्वज्ञात है। पहले (अतीत कल्पमें) उसके स्वरूपको जाननेसे सभी महत्तम पुरुष ब्रह्मभावको प्राप्त हुए हैं। जिसके सुननेसे सभी बन्धन समूल नष्ट हो जाते हैं, जिसके ज्ञानसे सभी रहस्य ज्ञात हो जाते हैं, उसका स्वरूप कैसा है, यह बतलाते हैं— ॥ २-३ ॥

"शान्त, अप्रमत्त, अत्यन्त विरक्त, अत्यन्त पवित्र, गुरुभक्त, तपस्वी शिष्यने ब्रह्मनिष्ठ गुरुको प्राप्तकर, उनकी प्रदक्षिणा की, भूमिपर लेटकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और दोनों हाथोंकी अञ्जलि बाँधकर, विनयपूर्वक समीप जाकर कहा—'भगवन्! गुरुदेव! मुझे परमतत्त्वके रहस्यको खोलकर बतलाइये।' अत्यन्त आदरपूर्वक हर्षसे शिष्यकी बहुत प्रशंसा करके गुरु बोले—'परमतत्त्व-रहस्योपनिषद्का क्रम बतला रहा हूँ', सावधानीसे सुनो"—

'ब्रह्म कैसा है? (भूत, भविष्य, वर्तमान) तीनों कालोंसे जो अबाधित है—किसी भी कालमें जिसका अभाव नहीं होता, वह ब्रह्म है। समस्त कालोंसे अबाधित (अनवच्छिन्न) तत्त्व ब्रह्म है। ब्रह्म सगुण एवं निर्गुण दोनों है। ब्रह्म आदि, मध्य एवं अन्तसे रहित है। यह सब (दृश्यादृश्य जगत्) ब्रह्म है। ब्रह्म मायातीत है और गुणातीत है। ब्रह्म अनन्त, प्रमाणोंसे अज्ञेय, अखण्ड और परिपूर्ण है। अद्वितीयरूप, परमानन्द, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्यस्वरूप, व्यापक, भेदहीन एवं अपरिच्छिन्न है। ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप एवं स्वतःप्रकाश है। ब्रह्म मन-वाणीसे अतीत है। ब्रह्म सम्पूर्ण प्रमाणोंसे परे है। अगणित वेदान्तों (उपनिषदों)-द्वारा ब्रह्म ही जाननेयोग्य है। देशसे, कालसे तथा वस्तुसे ब्रह्म परिच्छेदहीन (असीमित) है। ब्रह्म सब प्रकार परिपूर्ण है। ब्रह्म तुरीयस्वरूप, निराकार एवं अद्वितीय है। ब्रह्म द्वैतके साथ अवर्णनीय है। ब्रह्म प्रणवस्वरूप है। ब्रह्म प्रणवात्मारूपसे कहा गया है। प्रणवप्रभृति समस्त मन्त्रोंका स्वरूपभूत ब्रह्म है। ब्रह्मके चार पाद हैं' ॥ ४-५ ॥

'ब्रह्मके वे चार पाद कौन-कौन हैं?—अविद्यापाद, सुविद्यापाद, आनन्दपाद और तुरीयपाद—ये ही वे चार पाद हैं। तुरीयपाद तुरीयावस्थाका भी तुरीय तथा तुरीयातीत है। इन चारों पादोंमें भेद क्या है? अविद्यापाद पहला पाद है, विद्यापाद दूसरा है, आनन्दपाद तीसरा है और तुरीयपाद चौथा है। मूल-अविद्या प्रथम पादमें ही है, दूसरोंमें नहीं। विद्या, आनन्द एवं तुरीयके अंश सभी पादोंमें व्याप्त होकर रहते हैं। यदि ऐसी बात है तो विद्यादि पादोंमें भेद किस प्रकार है?—उन विद्यादिकी प्रधानताके कारण उनके द्वारा नामोंका निर्देश होता है। वस्तुतः तो अभेद ही है। उन चार पादोंमें एक नीचेका पाद ही अविद्यामिश्रित होता है। ऊपरके तीनों पाद शुद्ध ज्ञान एवं आनन्दस्वरूप तथा अमृत (शाश्वत) रहते हैं। वे तीनों पाद अलौकिक परमानन्दस्वरूप अखण्ड अमित तेजोराशिके रूपमें प्रकाशित रहते हैं और वे अनिर्वचनीय, अनिर्देश्य, अखण्ड आनन्दैकरसात्मक हैं। उनमेंसे मध्यम अर्थात् आनन्दपादके मध्यप्रदेशमें अमित तेजके प्रवाहरूपमें नित्य वैकुण्ठसे विराजमान है और वह निरतिशय आनन्द एवं अखण्ड ब्रह्मानन्दस्वरूप अपनी मूर्तिसे प्रकाशित है। जैसे अनन्त मण्डल दिखायी पड़ते हैं, उसी प्रकार अखण्ड आनन्दमय भगवान् विष्णुकी अमित दिव्य तेजोराशिके अन्तर्गत सुशोभित श्रीमहाविष्णुका श्रेष्ठ स्थान विराजमान है। भगवान् विष्णुका यह परमधाम क्षीरसमुद्रके मध्यमें स्थित अविनाशी अमृतके कलशके समान दिखायी पड़ता है। सुदर्शनचक्रके दिव्य तेजके मध्यमें जैसे सुदर्शनके अभिमानी देवपुरुष रहते हैं, जैसे सूर्यमण्डलमें सूर्यनारायण हैं, वैसे ही अमित, अपरिच्छिन्न, अद्वैत परमानन्दरूप तेजोराशिमें आदिनारायण दिखलायी पड़ते हैं।'

'वे ही (आदिनारायण) तुरीय ब्रह्म हैं। वे ही तुरीयातीत हैं। वे ही विष्णु (व्यापक) हैं। वे ही समस्त ब्रह्मवाचक शब्दोंके वाच्य हैं। वे ही परम ज्योति हैं। वे ही मायातीत हैं। वे ही गुणातीत हैं। वे ही कालातीत हैं। वे ही समस्त कर्मोंसे परे हैं। वे ही सत्य एवं उपाधिरहित हैं। वे ही परमेश्वर (सर्वसंचालक) हैं। वे ही पुराणपुरुष हैं। प्रणवादि समस्त मन्त्ररूप वाचकोंके वाच्य, आदि-अन्तरहित, आदि-देश-काल-वस्तु तथा तुरीय संज्ञावाले (इन सबके वाच्य) एवं नित्य परिपूर्ण, सब प्रकारसे पूर्ण, सत्यसंकल्प, आत्माराम, तीनों कालोंसे अबाधित स्वरूपवाले, स्वयंज्योति, स्वयंप्रकाशमय, अपने समान वस्तुसे रहित अर्थात् सर्वथा अद्वितीय, जिनके समान भी कोई नहीं है, फिर अधिककी तो बात ही क्या, जिनमें दिन-रात्रिके विभाग नहीं हैं,

जिनमें संवत्सरादि काल-विभाग नहीं हैं, निजानन्दमय अनन्त-अचिन्त्य ऐश्वर्यवाले, आत्माके भी अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा, तुरीयात्मा आदि शब्दोंके वाच्य, अद्वैत परमानन्दरूप, विभु (सर्वव्यापक), नित्य, निष्कलङ्क, निर्विकल्प, निरञ्जन, संज्ञारहित, शुद्ध देवता एकमात्र नारायण ही हैं; दूसरा कोई नहीं है। जो इस प्रकार जानता है, वह पुरुष उन (श्रीनारायणभगवान्)-की उपासनासे उनके सायुज्यको प्राप्त करता है—यह संशयरहित बात है'॥ ६—११॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त॥ १॥

द्वितीय अध्याय

साकार-निराकार परब्रह्मके स्वरूपका निरूपण

तब (प्रथमाध्यायके उपदेशको सुनकर) शिष्यने अपने भगवत्स्वरूप गुरुदेवसे कहा—'भगवन्! वैकुण्ठ एवं श्रीमन्नारायणको भी आपने नित्य बतलाया है। वे ही (वैकुण्ठ एवं श्रीनारायण) तुरीयतत्त्व हैं, यह भी कहा ही है। श्रीवैकुण्ठधाम साकार है और श्रीमन्नारायण भी साकार हैं; किंतु तुरीयतत्त्व निराकार है। साकारतत्त्व अवयवयुक्त होता है और निराकार अवयवरहित। अतः श्रुति यह कहती है कि साकार अनित्य होता है और निराकार नित्य होता है। जो-जो (पदार्थ) अवयववाले हैं, वे सब अनित्य हैं—अनुमान-प्रमाणसे यही सिद्ध होता है तथा प्रत्यक्ष भी देखा जाता है। अतः उन दोनों (वैकुण्ठ एवं नारायण)-की अनित्यता बतलाना ही उचित है। आपने उनका नित्यत्व किस प्रकार बतलाया है? तुरीयतत्त्व अक्षर (अविनाशी) है—यह श्रुति कहती है; अतः तुरीयतत्त्वका नित्यत्व प्रसिद्ध है। नित्य एवं अनित्य—ये परस्पर-विरोधी धर्म हैं। इन दोनों विरोधी धर्मोंका एक ही ब्रह्ममें होना अत्यन्त विरोधी (असंगत) है। इसलिये श्रीवैकुण्ठधाम एवं श्रीमन्नारायणकी भी अनित्यता ही बतलाना उचित है।' (शिष्य यह शङ्का करता है।)॥ १॥

गुरु शङ्काका निवारण करते हुए कहते हैं—"(तुम जो कहते हो, वह) ठीक ही है; (किंतु) साकारतत्त्व दो प्रकारका होता है—उपाधिसहित तथा उपाधिरहित। इनमें उपाधिसहित साकार किस प्रकारका है? अविद्यासे उत्पन्न समस्त कार्य एवं कारण अविद्यापादमें ही हैं और कहीं नहीं। इसलिये समस्त अविद्योपाधिसे युक्त साकारतत्त्व (पदार्थ) अवयवयुक्त ही है। अवयवयुक्त होनेसे (वे) अवश्य अनित्य होंगे ही। (इस प्रकार) उपाधियुक्त साकारका वर्णन हो चुका।"

"तब उपाधिहीन साकार किस प्रकारका है? निरुपाधिक साकार तीन प्रकारका है—ब्रह्मविद्यासाकार, आनन्दसाकार तथा उभयात्मक (ब्रह्मविद्यानन्दात्मक) साकार। (यह) त्रिविध साकार भी फिर दो प्रकारका होता है—नित्यसाकार और मुक्तसाकार। नित्यसाकार तो आदि-अन्तहीन सनातन (शाश्वत) है। जो उपासनाद्वारा मुक्तिपदको प्राप्त हुए हैं, उनका साकार देह-मुक्तसाकार है। उस (मुक्त पुरुषके आकार)-का आविर्भाव अखण्ड ज्ञानसे होता है अर्थात् भगवद्धाममें स्थित मुक्तात्माओंका शरीर ज्ञानघन है वह (मुक्तात्माओंका साकार शरीर) भी शाश्वत होता है; परंतु वह मुक्तसाकार ऐच्छिक (इच्छाधीन) होता है। दूसरे कहते हैं (ऐसी स्थितिमें) उसका शाश्वतपना (नित्यत्व) कैसे होगा? (इसपर कहते हैं—)"॥ २—७॥

"अद्वैत, अखण्ड, परिपूर्ण, निरतिशय परमानन्दरूप, शुद्ध, ज्ञानस्वरूप, मुक्त, सत्यस्वरूप ब्रह्मकी चैतन्यरूप साकारता होनेसे उपाधिहीन साकारका नित्यत्व सिद्ध ही है। इसीलिये निरुपाधिक साकारके निरवयव होनेके कारण उससे कोई अधिक (महान्) होगा, ऐसी शङ्का दूरसे ही निवृत्त हो जाती है। सभी उपनिषदोंमें, समस्त शास्त्र-सिद्धान्तोंमें 'ब्रह्म निरवयव चैतन्य है' यही सुना जाता है और विद्या, आनन्द तथा तुरीयका सर्वत्र अभेद ही सुना जाता है।"

'(तब) विद्या आदि साकारका भेद किस प्रकार है?' शिष्यकी इस शङ्काका समाधान करते हुए गुरु कहते हैं—'(तुमने) सत्य कहा है—विद्याकी प्रधानतासे विद्यासाकार, आनन्दकी प्रधानतासे आनन्दसाकार तथा (विद्या, आनन्द) दोनोंकी प्रधानतासे उभयात्मक साकार कहे जाते हैं। यहाँ प्रधानताको लेकर ही भेद है, वह भेद वस्तुतः अभेद ही है'॥ ८—१०॥

'भगवन्! अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप ब्रह्मके लिये साकार और निराकार—ये दो विरोधी धर्म प्रतीत होते हैं। दो विरोधी धर्म उनमें किस प्रकार रह सकते हैं?' इस

शङ्काका निवारण करते हुए गुरु कहते हैं—'यह ठीक है। जैसे सर्वव्यापी निराकार महावायुका और उसीके स्वरूपभूत त्वक्-इन्द्रियके अधिष्ठातारूपमें प्रसिद्ध साकार महावायु-देवताका अभेद ही सब कहीं सुना जाता है, जैसे पृथिवी आदि व्यापक शरीरवाले देवविशेषोंके उनके उस व्यापक रूपसे विलक्षण किंतु उस (व्यापकरूप)-से अभिन्न, तथा अपरिच्छिन्न होते हुए भी अपनी मूर्तिके आकारके देवता सर्वत्र सुने जाते हैं—अर्थात् जैसे पृथिवी आदिके अधिष्ठाता देवता अपने पृथिवीरूपी भौतिक शरीर एवं देवशरीर दोनोंसे युक्त हैं, वैसे ही सर्वात्मक परब्रह्ममें साकार एवं निराकारका भेद होनेपर भी विरोध नहीं है। विविध प्रकारकी अनन्त विचित्र शक्तियोंसे सम्पन्न परब्रह्मके स्वरूपका ज्ञान हो जानेपर विरोध नहीं रह जाता अर्थात् जब जान लिया जाता है कि परब्रह्ममें विविध प्रकारकी अनन्त विचित्र शक्तियाँ हैं, तब विरोधी धर्मोंका विरोध असङ्गत नहीं लगता। इस (ज्ञान)-के अभावमें ही अनन्त विरोध प्रतीत होते हैं'॥ ११-१२॥

'और जब श्रीराम-श्रीकृष्णादि अवतारस्वरूपोंमें अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्मके परमतत्त्व एवं परमैश्वर्यकी स्मृति सर्वत्र स्वाभाविक रूपसे ही विद्यमान सुनी जाती है, तब अद्वैत परमानन्दस्वरूप, सब प्रकारसे परिपूर्ण परब्रह्मके विषयमें क्या कहा जाय। अन्यथा यदि सर्वपरिपूर्ण परब्रह्मका साकाररहित केवल निराकार स्वरूप ही वास्तवमें अभिप्रेत हो, तब तो केवल निराकार आकाशके समान परब्रह्ममें भी जडता आ जायगी। इसलिये परमार्थतः परब्रह्मके साकार एवं निराकार दोनों रूप स्वभावतः सिद्ध हैं'॥ १३॥

'इस प्रकारके अद्वैत परमानन्दस्वरूप आदिनारायणके पलक उठाने और गिरानेसे मूल-अविद्याकी उत्पत्ति, स्थिति एवं लय हुआ करते हैं। आत्माराम, अखिल-परिपूर्ण आदिनारायणकी अपनी इच्छासे जब कभी उनका उन्मेष होता है (पलक उठते हैं), तब उस (उन्मेष)-से परब्रह्मके निचले पादमें, जो सब (अभिव्यक्तियों)-का कारण है, मूलकारणरूप अव्यक्त (प्रकृति)-का आविर्भाव होता है। अव्यक्तसे मूल (संस्कार)-का एवं मूल-अविद्याका आविर्भाव होता है। उसी (अव्यक्त)-से 'सत्'-शब्दसे वाच्य अविद्यामिश्रित ब्रह्म (जीव) व्यक्त होता है। उस (अव्यक्त-प्रकृति)-से महत्तत्त्व, महत्से अहङ्कार, अहङ्कारसे (शब्दादि) पाँचों तन्मात्राएँ, पाँचों तन्मात्राओंसे (आकाशादि) पञ्चमहाभूत और पाँचों महाभूतोंसे ब्रह्मके एक पादसे व्याप्त एक अविद्यात्मक अण्ड उत्पन्न होता है'॥ १४॥

'उस (अविद्याण्ड)-में तत्त्वतः गुणातीत, शुद्ध सत्त्वमय तथा लीला (क्रीड़ा)-के लिये निरतिशय आनन्दरूप धारण किये मायोपाधियुक्त नारायण होते हैं। तात्पर्य यह कि अविद्याण्ड गुणातीत शुद्ध सत्त्वमय नारायणका ही लीलाके लिये धारण किया हुआ निरतिशय आनन्दरूप मायोपाधिक स्वरूप ही है। ये वही नित्य परिपूर्ण पादविभूतिस्वरूप वैकुण्ठवासी नारायण हैं। वे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयादि समस्त कार्य एवं कारणसमूहोंके (प्रकृतिरूप) परम कारणके भी कारणरूप महामायातीत तुरीयस्वरूप परमेश्वर विराजित हैं। उनसे स्थूल विराट्स्वरूप उत्पन्न होता है। वही विराट्स्वरूप समस्त कारणोंका मूल है। वह (विराट्) अनन्त मस्तकों तथा अनन्त नेत्रों, हाथों और पैरोंसे युक्त पुरुष है। वह अनन्त कानोंवाला सबको घेरकर (व्याप्त करके) स्थित है। वह सर्वव्यापक है। वह सगुण एवं निर्गुणस्वरूप है। वह ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, शक्ति तथा तेजःस्वरूप है। नाना प्रकारके अनन्त विचित्र जगत्के आकारमें वही स्थित है। वही निरतिशय आनन्दमय अनन्त परमविभूतिके समुदायसे सम्पन्न विश्वरूप परमात्मा है। वह निरतिशय निरङ्कुशता (परमस्वतन्त्रता) सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता सर्वनियन्तृत्व आदि अनन्त कल्याणकारी गुणोंका आकर है। वह अवर्णनीय अनन्त दिव्य तेजोराशिके रूपमें स्थित है। वह अविद्याके पूरे अण्डमें व्यापक है। वह महामायाके अनन्त विलासोंका अधिष्ठानविशेष एवं निरतिशय अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्मका विलासविग्रह है'॥ १५॥

'इस (विराट्-पुरुष)-के एक-एक रोमकूप-छिद्रमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड और (उनके) स्थावर भी उत्पन्न होते हैं। उन सब अण्डोंमेंसे प्रत्येकमें नारायणका एक-एक अवतार होता है। उन्हीं नारायणसे हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) उत्पन्न होते हैं। नारायणसे ही उस अण्डका विराट्स्वरूप उत्पन्न होता है, नारायणसे ही सब लोकोंके स्रष्टा प्रजापति उत्पन्न होते हैं। नारायणसे ही एकादश रुद्र भी उत्पन्न होते हैं। नारायणसे ही अखिल लोक उत्पन्न होते हैं। नारायणसे इन्द्र उत्पन्न होते हैं। नारायणसे समस्त देवता उत्पन्न होते हैं। नारायणसे बारह आदित्य उत्पन्न होते हैं। सब (आठों) वसुनामक

देवता, सभी ऋषि, सम्पूर्ण प्राणी तथा समस्त छन्द नारायणसे ही उत्पन्न होते हैं। नारायणसे ही प्रवृत्त होते (क्रियाशील बनते) हैं। नारायणमें ही सब लीन हो जाते हैं। अतः (ये ही) नित्य, अविनाशी, सर्वश्रेष्ठ एवं स्वयंप्रकाश हैं। नारायण ही ब्रह्मा हैं। नारायण ही शिव हैं। नारायण ही इन्द्र हैं। नारायण ही दिशाएँ हैं। नारायण ही विदिशारूप (कोण) हैं। नारायण ही काल हैं। नारायण ही समस्त कर्म हैं। नारायण ही मूर्त एवं अमूर्तरूप हैं। नारायण ही समस्त कारणरूप तथा सम्पूर्ण कार्यस्वरूप हैं। इन दोनों (कारण तथा कार्य)-से विलक्षण भी नारायण ही हैं। परमज्योति, स्वयंप्रकाशमय, ब्रह्मानन्दमय, नित्य, निर्विकल्प, निरञ्जन, अवर्णनीय, शुद्ध एकमात्र देवता नारायण ही हैं; दूसरा कोई नहीं है। न वे (किसीके) समान हैं और न (किसीसे) अधिक हैं (उनके सिवा कोई दूसरा है ही नहीं)।'

'संशयरहित होकर परमार्थतः जो इस प्रकार जानता है, वह सम्पूर्ण बन्धनोंको छेदन करके, मृत्युको पार करके मुक्त हो जाता है, मुक्त हो जाता है। जो इस प्रकार जानकर सर्वदा उन (श्रीनारायण)-की उपासना करता है, वह पुरुष नारायण-स्वरूप हो जाता है, वह नारायणस्वरूप हो जाता है'॥ १६॥

॥ द्वितीय अध्याय समाप्त॥ २॥

तृतीय अध्याय

मूलाविद्या और प्रलयके स्वरूपका निरूपण

शिष्यने 'ठीक है' कहकर फिर पूछा—'भगवन्! परमतत्त्वज्ञ गुरुदेव! आपने विलासके सहित महामूल-अविद्याके उदयक्रमका वर्णन किया। उस (मूलाविद्या)-से प्रपञ्चकी उत्पत्तिका क्रम किस प्रकार है, इसे विशेषतः वर्णन करें। मैं उसका तत्त्व जानना चाहता हूँ'॥ १॥

'ऐसा ही हो' यह कहकर गुरु बोले—'यह अनादि प्रपञ्च जैसा दिखायी पड़ता है, वह नित्य है या अनित्य—इस प्रकारका संशय उत्पन्न होता है। प्रपञ्च भी दो प्रकारका है—विद्या-प्रपञ्च और अविद्या-प्रपञ्च। विद्या-प्रपञ्चकी नित्यता तो इसीसे सिद्ध है कि वह नित्यानन्दमय चैतन्यका विलास तथा शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्य एवं आनन्दस्वरूप है। अविद्या-प्रपञ्च नित्य है या अनित्य?—कुछ लोग प्रवाहरूपसे उसकी नित्यता बतलाते हैं। शास्त्रोंमें प्रलयादिका वर्णन सुना जाता है, इस कारणसे दूसरे उसकी अनित्यता बतलाते हैं। वस्तुतः दोनों ही (बातें) नहीं हैं। फिर है किस प्रकार? समस्त अविद्या-प्रपञ्च महामायाका संकोच एवं विकासरूप विलास ही है। क्षण-क्षणमें शून्य (तिरोहित) होनेवाला अनादि मूल-अविद्याका विलास होनेके कारण परमार्थतः कुछ भी नहीं है अर्थात् समस्त अविद्या-प्रपञ्च प्रतिक्षण विलीन होनेवाला है, अतः उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है। वह किस प्रकार? एकमात्र अद्वितीय ब्रह्म ही है। यहाँ नाना (अनेक) नामकी वस्तु कुछ भी नहीं है (—ऐसी श्रुति है)। अतएव ब्रह्मसे भिन्न सब बाधित (प्रतीतिमात्र, सत्ताहीन) ही है। सत्य ही परम ब्रह्म है। ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप एवं अन्तहीन है'॥ २॥

'तब विलास (अभिव्यक्ति)-सहित मूल-अविद्याके उपसंहारका क्रम किस प्रकार है?' (यों शिष्यके पूछनेपर) अत्यन्त आदरपूर्वक बड़ी प्रसन्नतासे गुरु उपदेश करते हैं—'सहस्र चतुर्युगोंका ब्रह्माजीका एक दिवस होता है। इतने ही समयकी फिर उनकी रात्रि होती है। रात्रि और दिवस दोनोंका सम्मिलित रूप एक दिन होता है। उस एक दिनमें सत्यलोकतकके समस्त लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति एवं लय हो जाते हैं। (ऐसे) पंद्रह दिनोंका (ब्रह्माजीका) पक्ष (पखवाड़ा) होता है। दो पक्षोंका महीना होता है। दो महीनोंका ऋतु होता है। तीन ऋतुओंका अयन होता है। दो अयनोंका वर्ष होता है। ब्रह्माके वर्षोंके प्रमाणसे सौ वर्षकी ब्रह्माजीकी परमायु (पूर्ण आयु) होती है। इतने समयतक उन (ब्रह्माजी)-की स्थिति कही जाती है। स्थितिके अन्तमें अण्डगत विराट्पुरुष अपने अंशी हिरण्यगर्भको प्राप्त होते (उनमें लीन हो जाते) हैं। हिरण्यगर्भके कारण परमात्मा अण्डपरिपालक नारायणको वे हिरण्यगर्भ प्राप्त होते हैं। फिर सौ वर्षोंतक उनकी प्रलय होती है। उस समय सब जीव प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं। प्रलयके समय सब शून्य (अभावरूप) हो जाता है'॥ ३-४॥

'उन ब्रह्माजीकी स्थिति एवं प्रलय आदि-नारायणके अंशसे अवतीर्ण इन अण्ड-परिपालक महाविष्णुके दिवस एवं रात्रि कहे जाते हैं। इन दिवस एवं रात्रिका (अर्थात्

ब्रह्माके सौ वर्षोंके जीवन एवं सौ वर्षोंकी प्रलयका) महाविष्णुका एक दिन होता है। इसी प्रमाणसे दिन, पक्ष, मास, संवत्सर आदि भेदसे उनके सौ करोड़ (एक अरब) वर्षोंतक उनकी स्थिति कही जाती है। स्थितिके अन्तमें (वे) अपने कारण महाविराट् पुरुषको प्राप्त होते (उनमें लीन हो जाते) हैं। तब आवरणके साथ ब्रह्माण्ड विनष्ट हो जाता है। ब्रह्माण्डका आवरण विनष्ट होता है, वही (आवरण) विष्णुका स्वरूप है। उनकी (श्रीमहाविष्णुकी) उतनी ही (उनके एक अरब वर्षकी) प्रलय होती है। प्रलयके समय सब शून्य हो जाता है'॥ ५॥

'अण्डपरिपालक महाविष्णुकी स्थिति एवं प्रलय (उनके दो अरब वर्ष) आदिविराट् पुरुषके दिवस-रात्रि कहे जाते हैं। उन दिवस-रात्रिका एक दिन होता है। इसी प्रकार दिन, पक्ष, मास, संवत्सर आदि भेदसे उनके कालमानके सौ करोड़ (एक अरब) वर्षपर्यन्त उनकी स्थिति कही जाती है। स्थितिके अन्तमें आदिविराट् पुरुष अपने अंशी मायोपाधिक नारायणको प्राप्त होता है अर्थात् उनमें लीन हो जाता है। उस विराट्पुरुषका जितना स्थितिकाल है, उतना ही प्रलयकाल भी होता है। प्रलयके समय सब शून्य हो जाता है'॥ ६॥

'विराट्की स्थिति एवं प्रलय मूल-अविद्याण्ड-परिपालक आदि-नारायणके दिवस-रात्रि कहे जाते हैं। उन दिवस-रात्रिका एक दिन होता है। इसी प्रकार दिन, पक्ष, मास, संवत्सर आदि भेदसे उनके कालमानके सौ करोड़ वर्षोंके समयतक उनकी स्थिति कही जाती है। स्थितिके अन्तमें त्रिपाद्विभूतिनारायणकी इच्छासे उनका निमेष होता है (उनकी पलकें गिरती हैं)। इस निमेषसे मूल-अविद्याण्डका उसके आवरणके साथ प्रलय हो जाता है। तब मूल-अविद्या, जो सत्-असत्से विलक्षण, अनिर्वचनीय, लक्षणरहित, आविर्भाव-तिरोभावरूप, अनादि अखिल कारणोंकी कारणरूप एवं अनन्त महामायाविशेषणोंसे युक्त है, अपने विलासके साथ तथा सम्पूर्ण कार्यरूप उपाधिके सहित परमसूक्ष्म मूल कारण—अव्यक्तमें प्रवेश कर जाती है। अव्यक्त फिर ब्रह्ममें प्रवेश कर जाता है; उस समय ईंधनके जल जानेपर जैसे अग्नि अपने वास्तविक स्वरूपको प्राप्त कर लेता है, वैसे ही मायोपाधिक आदिनारायण मायारूप उपाधिके नष्ट हो जानेपर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं। समस्त जीव अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाते हैं। जैसे जपा (जवा)-पुष्पके सान्निध्य (समीपता)-से स्फटिकमें ललाईकी प्रतीति होती है और उस (पुष्प)-के अभावमें शुद्ध स्फटिक प्रतीत होता है, वैसे ही ब्रह्ममें भी मायारूप उपाधिसे ही सगुणत्व, परिच्छिन्नत्व आदिकी प्रतीति होती है। उपाधिका नाश हो जानेपर निर्गुणत्व, निरवयवत्व आदिकी प्रतीति होती है'॥ ७॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त॥ ३॥

चतुर्थ अध्याय

महामायातीत अखण्ड अद्वैत परमानन्दमय परतत्त्व-स्वरूपका निरूपण

ॐ। उपाधिका नाश हो जानेके कारण ब्रह्मका निर्विशेष रूप अत्यन्त निर्मल होता है। वह अविद्यासे परे, अतः अत्यन्त शुद्ध है। शुद्ध बोधानन्दमय कैवल्यस्वरूप है। ब्रह्मके चारों पाद निर्विशेष हैं। वह अखण्डस्वरूप, सर्वतः परिपूर्ण, स्वयंप्रकाश सच्चिदानन्द है। अद्वितीय तथा ईश्वररहित है—अर्थात् उसका कोई स्वामी, नियन्ता नहीं है। वह ब्रह्म समस्त कार्यकारणस्वरूप, अखण्ड चिद्घनानन्दरूप, अतिदिव्य मङ्गलाकार, निरतिशय आनन्दरूप तेजोराशिविशेष, सर्वपरिपूर्ण, अनन्त चिद्विलासमय विभूतिका समष्टिरूप, अद्भुत आनन्दमय आश्चर्यपूर्ण विभूतिविशेषस्वरूप, अनन्त चिन्मय स्तम्भाकार, शुद्ध ज्ञानानन्दविशेषस्वरूप, अनन्त परिपूर्णानन्दमय दिव्य विद्युन्मालास्वरूप है। इस प्रकार ब्रह्मका अद्वितीय अखण्डानन्दमय स्वरूप वर्णित हुआ॥ १॥

फिर शिष्य कहता है—'भगवन्! ब्रह्मके पादभेदादि कैसे सम्भव हैं और यदि हैं तो वह अद्वैतस्वरूप है—यह किस प्रकार कहा गया?'॥ २॥

गुरु शङ्काका समाधान करते हैं—'इसमें विरोध नहीं है। ब्रह्म अद्वैत है, यही सत्य है और यही कहा गया है। ब्रह्ममें भेद नहीं बताया गया है; (क्योंकि) ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। पादभेदादिका वर्णन तो ब्रह्मके स्वरूपका ही वर्णन है। वही कहा जा रहा है। ब्रह्म चार पादवाला (चतुःपादात्मक) है। इन (चारों

पादों)-में एक अविद्यापाद है और तीन पाद अमृत (नित्य) हैं। (दूसरी शाखाओंके) उपनिषदोंमें वर्णित स्वरूपका ही यहाँ वर्णन किया गया है। (शाखान्तरीय उपनिषदोंमें इस प्रकारके वचन मिलते हैं—) 'त्रिपादस्वरूप ब्रह्म अविद्यारूप अन्धकारसे परे, ज्योतिर्मय, परमानन्दस्वरूप एवं सनातन परम कैवल्यरूप है। मैं इस आदित्यके समान प्रकाशमय, तमस्‌के परे स्थित महान् पुरुषको जानता हूँ। उसको इस प्रकार (तमस्‌से परे तेजोमयरूपमें) जाननेवाला यहाँ (संसारमें) अमृतस्वरूप (मुक्त) हो जाता है। मोक्षप्राप्तिके लिये दूसरा कोई मार्ग नहीं है। सम्पूर्ण ज्योतियोंकी ज्योति तमस्‌से परे कही गयी है। सबकी आधारभूत, अचिन्त्यस्वरूप, आदित्यवर्ण (प्रकाश-स्वरूप) परम ज्योति तमस्‌से ऊपर (परे) प्रकाशित है। जो एक, अव्यक्त, अनन्तस्वरूप, विश्वरूप पुरातन तत्त्व तमस्‌से परे अवस्थित है, वही ऋत (समस्त काम्य कर्मोंका फल—स्वर्गादि) है। उसीको सत्य (निष्कामभावका प्राप्य) कहा गया है। वही सत्य (नित्यसत्ता) है। वही परम विशुद्ध ब्रह्म है। (इन मन्त्रोंमें) तमस्-शब्दके द्वारा अविद्या कही जाती है'॥ ३—८॥

'समस्त भूत इन (ब्रह्म)-का एक पाद (भाग) हैं। इनके शेष तीन पाद अमृतस्वरूप (नित्य) हैं, जो परम व्योममें प्रतिष्ठित हैं। तीन पादोंवाला पुरुष सबसे ऊपर प्रकाशित है और इसका अवशिष्ट एक पाद सम्पूर्ण जीवोंके रूपमें इस जगत्‌में प्रकट हुआ। इसके बाद वह जड-चेतनात्मक विश्वमें चारों ओर व्याप्त हो गया। विद्या, आनन्द एवं तुरीय नामक तीन पाद शाश्वत हैं। शेष चौथा पाद अविद्याके आश्रित है'॥ ९-१०॥

(शिष्य पूछता है—) 'आत्माराम श्रीआदिनारायणके उन्मेष-निमेष (नेत्रोन्मीलन-निमीलन) कैसे होते हैं? उनका स्वरूप क्या है?'॥ ११॥

गुरु बतलाते हैं—'बाह्य-दृष्टि उन्मेष (पलक खोलना) है और आन्तरिक-दृष्टि निमेष (पलक बंद करना) है। अन्तर्दृष्टिसे अपने स्वरूपका चिन्तन करना ही निमेष (पलक बंद करना) है। बाह्य-दृष्टिसे अपने स्वरूपका चिन्तन करना ही उन्मेष (पलक खोलना) है। जितने परिमाणका उन्मेषकाल होता है, उतने ही परिमाणका निमेषकाल भी होता है। उन्मेषकालमें अविद्याकी स्थिति होती है। निमेषकालमें उस (अविद्या)-का लय होता है। जैस उन्मेष होता है, वैसे ही चिरंतन अत्यन्त सूक्ष्म वासनाके प्रभावसे फिर अविद्याका उदय हो जाता है। पहलेकी भाँति ही अविद्याके कार्य उत्पन्न हो जाते हैं। फिर कार्य तथा कारणरूप उपाधिके भेदसे जीव एवं ईश्वरका भेद भी दिखायी देने लगता है। यह जीव कार्यरूप उपाधिसे युक्त है और ईश्वर कारणरूप उपाधिसे युक्त हैं। ईश्वरकी महामाया उन्हींकी आज्ञाके अधीन रहती हैं। वे (महामाया) उन (ईश्वर)-के संकल्पके अनुसार कार्य करनेवाली, विविध प्रकारकी अनन्त महामायाशक्तियोंसे भली प्रकार सेवित, अनन्त महामायाजालकी उत्पत्तिका स्थान, महाविष्णुकी लीला-शरीररूपिणी तथा ब्रह्मादिके लिये भी अगोचर हैं। जो भगवान् विष्णुका ही भजन करते हैं, वे इन महामायाको अवश्य पार कर जाते हैं। दूसरे लोग (जो भगवान् विष्णुका भजन नहीं करते) अनेक उपायोंका अवलम्बन करके भी कभी नहीं तरते। अविद्याके कार्यरूप अन्तःकरणोंका आश्रय लेकर वे अनन्तकालतक जन्मते रहते हैं; क्योंकि उन (अन्तःकरणों)-में ब्रह्मचैतन्य प्रतिबिम्बित होता है। प्रतिबिम्ब ही जीव कहलाते हैं। सभी जीव अन्तःकरणकी उपाधिसे युक्त हैं, यों (कुछ लोग) कहते हैं। समस्त जीव महाभूतोंसे उत्पन्न सूक्ष्मशरीररूप उपाधिसे युक्त हैं, इस प्रकार दूसरे लोग कहते हैं। बुद्धिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य ही जीव है, ऐसा दूसरोंका मत है। इन सब (जीवों)-में उपाधिको लेकर ही भेद है, अत्यन्त भेद नहीं है। सर्वतः परिपूर्ण श्रीनारायण तो अपनी इस इच्छाशक्तिसे सदा लीला किया करते हैं। इसी प्रकार सब जीव अज्ञानवश उन तुच्छ विषयोंमें, जिनमें सुख नहीं है, सुखप्राप्तिकी आशासे असार संसारचक्रमें दौड़ते रहते हैं। इस प्रकार अनादि संसार-वासनारूप विपरीत-भ्रमके कारण ही जीवोंकी संसार-चक्रमें घूमनेकी अनादि-परम्परा चलती रहती है'॥ १२—१४॥

॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥

॥ पूर्वकाण्ड समाप्त ॥

उत्तरकाण्ड

पञ्चम अध्याय

संसारसे तरनेका उपाय और मोक्षमार्गका निरूपण

श्रीगुरुभगवान्‌को नमस्कार करके फिर शिष्य पूछता है—'भगवन्! सम्पूर्णतः नष्ट हुई अविद्याका फिर उदय कैसे होता है?'॥ १॥

'यह सत्य है' यों कहकर गुरु बोले—'वर्षा ऋतुके प्रारम्भमें जैसे मेढ़क आदिका फिरसे प्रादुर्भाव होता है, उसी प्रकार पूर्णतः नष्ट हुई अविद्याका उन्मेषकालमें (भगवान्‌के पलक खोलनेपर) फिर उदय हो जाता है'॥ २॥

(शिष्यने फिर पूछा—) 'भगवन्! जीवोंका अनादि संसाररूप भ्रम किस प्रकार है? और उसकी निवृत्ति कैसे होती है? मोक्षके मार्गका स्वरूप कैसा है? मोक्षका साधन कैसा है? अथवा मोक्षका उपाय क्या है? मोक्षका स्वरूप कैसा है? सायुज्य-मुक्ति क्या है? यह सब तत्त्वतः वर्णन करें'॥ ३॥

अत्यन्त आदरपूर्वक, बड़े हर्षसे शिष्यकी बहुत प्रशंसा करके गुरु कहते हैं—'सावधान होकर सुनो! निन्दनीय, अनन्त जन्मोंमें बार-बार किये हुए अत्यन्त पुष्ट अनेक प्रकारके विचित्र अनन्त दुष्कर्मोंके वासनासमूहोंके कारण (जीव)-को शरीर एवं आत्माके पृथक्त्वका ज्ञान नहीं होता। इसीसे 'देह ही आत्मा है' ऐसा अत्यन्त दृढ़ भ्रम हुआ रहता है। 'मैं अज्ञानी हूँ, मैं अल्पज्ञ हूँ, मैं जीव हूँ, मैं अनन्त दुःखोंका निवास हूँ, मैं अनादि कालसे जन्म-मरणरूप संसारमें पड़ा हुआ हूँ, इस प्रकारके भ्रमकी वासनाके कारण संसारमें ही प्रवृत्ति (चेष्टा) होती है। इस (प्रवृत्ति)-की निवृत्तिका उपाय कदापि नहीं होता। मिथ्यास्वरूप, स्वप्नके समान विषयभोगोंका अनुभव करके, अनेक प्रकारके असंख्य अत्यन्त दुर्लभ मनोरथोंकी निरन्तर आशा करता हुआ अतृप्त (जीव) सदा दौड़ा करता है। अनेक प्रकारके विचित्र स्थूल-सूक्ष्म, उत्तम-अधम अनन्त शरीरोंको धारण करके उन-उन शरीरोंमें विहित (प्राप्त होनेयोग्य) विविध विचित्र, अनेक शुभ-अशुभ प्रारब्धकर्मोंका भोग करके, उन-उन कर्मोंके फलकी वासनासे वासित (लिप्त) अन्तःकरणवालोंकी बार-बार उन-उन कर्मोंके फलरूप विषयोंमें ही प्रवृत्ति होती है। संसारकी निवृत्तिके मार्गमें प्रवृत्ति (रुचि) भी नहीं उत्पन्न होती। इसलिये (उनको) अनिष्ट ही इष्ट (मङ्गलकारी)-की भाँति जान पड़ता है। संसार-वासनारूप विपरीत भ्रमसे इष्ट (मङ्गलस्वरूप मोक्षमार्ग) अनिष्ट (अमङ्गलकारी)-की भाँति जान पड़ता है। इसलिये सभी जीवोंकी इष्टविषयमें सुखबुद्धि है तथा (उसके न मिलनेमें) दुःखबुद्धि है। वास्तवमें अबाधित ब्रह्मसुखके लिये तो प्रवृत्ति ही उत्पन्न नहीं होती; क्योंकि उसके स्वरूपका ज्ञान जीवोंको है नहीं। वह (ब्रह्मसुख) क्या है, यह जीव नहीं जानते; क्योंकि बन्धन कैसे होता है और मोक्ष कैसे होता है, इस विचारका ही (उनमें) अभाव है। यह (जीवोंकी अवस्था) कैसे है? अज्ञानकी प्रबलतासे। अज्ञानकी प्रबलता किस कारणसे है?—भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी वासना न होनेसे। इस प्रकारकी वासनाका अभाव क्यों है?—अन्तःकरणकी अत्यन्त मलिनताके कारण॥ ४॥

'अतः (ऐसी दशामें) संसारसे पार होनेका उपाय क्या है?' गुरु यही बतलाते हैं—'अनेक जन्मोंके किये हुए अत्यन्त श्रेष्ठ पुण्योंके फलोदयसे सम्पूर्ण वेद-शास्त्रके सिद्धान्तोंका रहस्यरूप सत्पुरुषोंका संग प्राप्त होता है। उस (सत्संग)-से विधि तथा निषेधका ज्ञान होता है। तब सदाचारमें प्रवृत्ति होती है। सदाचारसे सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है। पापनाशसे अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल हो जाता है'॥ ५-६॥

'तब (निर्मल होनेपर) अन्तःकरण सद्गुरुका कटाक्ष (दयादृष्टि) चाहता है। सद्गुरुके (कृपा-) कटाक्षके लेशसे ही सब सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। सब बन्धन पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। श्रेयके सभी विघ्न विनष्ट हो जाते हैं। सभी श्रेय (कल्याणकारी गुण) स्वतः आ जाते हैं। जैसे जन्मान्धको रूपका ज्ञान नहीं होता, उसी प्रकार गुरुके उपदेश बिना करोड़ों कल्पोंमें भी तत्त्वज्ञान नहीं होता। इसलिये सद्गुरुके (कृपा-) कटाक्षके लेशसे अविलम्ब ही तत्त्वज्ञान हो जाता है'॥ ७॥

'जब सद्गुरुका कृपा-कटाक्ष होता है, तब भगवान्‌की कथा सुनने एवं ध्यानादि करनेमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। उस (ध्यानादि)-से हृदयमें स्थित दुर्वासनाकी अनादि ग्रन्थिका विनाश हो जाता है। तब हृदयमें स्थित सम्पूर्ण कामनाएँ विनष्ट हो जाती हैं। इससे हृदय-कमलकी कर्णिकामें

परमात्मा आविर्भूत होते हैं।

'इससे भगवान् विष्णुमें अत्यन्त दृढ़ भक्ति उत्पन्न होती है। तब (विषयोंके प्रति) वैराग्य उदय होता है। वैराग्यसे बुद्धिमें विज्ञान (तत्त्वज्ञान)-का प्राकट्य होता है। अभ्यासके द्वारा वह ज्ञान क्रमशः परिपक्व होता है'॥ ८-९॥

'परिपक्व विज्ञानसे (पुरुष) जीवन्मुक्त हो जाता है। सभी शुभ एवं अशुभ कर्म वासनाओंके साथ नष्ट हो जाते हैं। तब अत्यन्त दृढ़ शुद्ध सात्त्विक वासनाद्वारा अतिशय भक्ति होती है। अतिशय भक्तिसे सर्वमय नारायण सभी अवस्थाओंमें प्रकाशित होते हैं। समस्त संसार नारायणमय प्रतीत होता है। नारायणसे भिन्न कुछ नहीं है, इस बुद्धिसे उपासक सर्वत्र विहार करता है'॥ १०॥

'(इस प्रकार) निरन्तर (भाव-) समाधिकी परम्परासे सब कहीं, सभी अवस्थाओंमें जगदीश्वरका रूप ही प्रतीत होता है। ऐसे महापुरुषको कभी-कभी ईश्वर-साक्षात्कार भी होता है'॥ ११॥

'इस (महापुरुष)-को जब शरीर छोड़नेकी इच्छा होती है, तब भगवान् विष्णुके सब पार्षद उसके पास आते हैं। तब भगवान्का ध्यान करता हुआ हृदय-कमलमें स्थित आत्मतत्त्वका अपने अन्तरात्माके रूपमें चिन्तन करके भली प्रकार (मानसिक) उपचारोंसे (उसकी) अर्चा करता है। फिर हंस-मन्त्र '**सोऽहम्**' का उच्चारण करता हुआ, सभी (इन्द्रिय-)द्वारोंका संयम करके, मनका भली प्रकार निरोध करता है और प्रणव (-के उच्चारण)-से प्रणव (-के अर्थ)-का अनुसंधान (विचार) करता हुआ ऊपरकी ओर गमन करनेवाले वायु (प्राण)-के साथ धीरे-धीरे ब्रह्मरन्ध्रसे बाहर चला जाता है। वहाँ '**सोऽहम्**' इस मन्त्रसे बारह (दस इन्द्रियाँ और मन तथा बुद्धि)-के अन्तमें (उनके आधाररूपसे) स्थित परमात्मा (चेतनतत्त्व)-को एकत्र करके (अर्थात् इन्द्रियों, मन एवं बुद्धिसे चेतना आकर्षित करके) पञ्चोपचार (जल, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य)-से (मानसिक रूपमें उस चेतनतत्त्वका) पूजन करता है। फिर '**सोऽहम्**' इस मन्त्रसे षोडश तत्त्वोंमें स्थित ज्ञानात्माको एकत्र करके भली प्रकार उपचारोंसे उसकी पूजा करता है। इस प्रकार पहलेके प्राकृत शरीरका त्याग करके फिर कल्पनामय, मन्त्रमय, शुद्ध ब्रह्म-तेजोमय, निरतिशय आनन्दमय महाविष्णुके स्वरूपके समान स्वरूपवाले शरीरको धारण करता है और सूर्यमण्डलमें स्थित भगवान् अनन्तके दिव्य चरणारविन्दके अङ्गुष्ठसे निकले हुए निरतिशय आनन्दमय देवनदी गङ्गाजीके प्रवाहका आकर्षण करके भावनाके द्वारा इस (देवगङ्गा-प्रवाह)-में स्नान करता है। तत्पश्चात् वस्त्र-आभरणादि सामग्रियोंसे अपनी पूजा (अलंकृति) करके, साक्षात् नारायणस्वरूप होकर फिर गुरुको नमस्कार करके प्रणवस्वरूप गरुडका ध्यान करता है और ध्यानके द्वारा प्रकट महाप्रणवरूप गरुडकी पञ्चोपचारसे अर्चा करता है। इसके बाद वह गुरुकी आज्ञासे प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करके प्रणवरूप गरुडपर सवार होता है और महाविष्णुके समस्त असाधारण चिह्नोंसे चिह्नित होकर तथा उन्हींके समस्त असाधारण दिव्य आभूषणोंसे भूषित होकर, सुदर्शन-पुरुष (पुरुष-विग्रहधारी सुदर्शनचक्र)-को आगे करके, विष्वक्सेनसे रक्षित, भगवान्के पार्षदोंसे घिरा हुआ आकाशमार्गमें प्रवेश करता है। मार्गके दोनों पार्श्वोंमें स्थित अनेक पुण्यलोकोंको पार करके, वहाँ रहनेवाले पुण्य-पुरुषोंसे पूजित होकर, सत्यलोकमें प्रवेश करके ब्रह्माजीकी पूजा करता है और ब्रह्मा तथा सत्यलोकके सभी वासियोंद्वारा भली प्रकार पूजित होकर, भगवान् शङ्करके ईशान कैवल्य (दिव्य कैलास)-में जा पहुँचता है। वहाँ भगवान् शङ्करका ध्यान करके, शिवजीकी पूजा करके, सभी शिवगणों एवं शङ्करजीद्वारा भी पूजित होकर ग्रहमण्डल तथा सप्तर्षिमण्डलको पार करके सूर्यमण्डल एवं चन्द्रमण्डलका भेदन करता है और कीलकनारायणका ध्यान करके, ध्रुवमण्डलका दर्शन करके, भगवान् ध्रुवकी पूजा करता है। फिर शिंशुमार-चक्रका भेदन करके, शिंशुमार प्रजापतिकी भली प्रकार अर्चा करता है और चक्र (शिंशुमारचक्र)-के मध्यमें स्थित सर्वाधार सनातन महाविष्णुकी आराधना करके, उनके द्वारा पूजित होकर तब ऊपर जाकर परमानन्दको प्राप्त होता है'॥ १२॥

'तब सब वैकुण्ठनिवासी उसके पास आते हैं। उन सबकी पूजा करके, उन सबसे पूजित होकर तथा और ऊपर जाकर विरजा नदीको प्राप्त करता है। वहाँ स्नान करके भगवान्का ध्यान करते हुए फिर उसमें डुबकी लगाकर, वहाँ अपञ्चीकृत (मूलरूप, अमिश्रित) पञ्च महाभूतोंसे बने सूक्ष्म अङ्गवाले भोगके साधनरूप सूक्ष्मशरीरको छोड़ देता है तथा मन्त्रमय, दिव्य तेजोमय, निरतिशय आनन्दमय

महाविष्णुके स्वरूपके समान शरीर धारण करके, फिर जलसे बाहर निकल आता है। वहाँ अपनी पूजा करके, प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करते हुए ब्रह्ममय वैकुण्ठमें प्रवेश करके, वहाँके निवासियोंकी भली प्रकार पूजा करके (देखता है कि) उस दिव्यधामके मध्यमें ब्रह्मानन्दमय अनन्त परकोटे, भवन, फाटक, विमान एवं उपवन-समूहोंसे तथा देदीप्यमान शिखरोंसे उपलक्षित निरुपम, नित्य, निर्दोष, निरतिशय, असीम ब्रह्मानन्द नामक पर्वत सुशोभित है'॥ १३॥

'उस (पर्वत)-के ऊपर निरतिशयानन्दमय दिव्य तेजोराशि प्रज्वलित है। उस (तेजोराशि)-के मध्यमें शुद्ध ज्ञानमय आनन्दस्वरूप प्रकाशित है। उसके मध्यमें चिन्मय वेदी है। वह (वेदी) आनन्दमय एवं आनन्दवनसे भूषित है। उसके मध्यमें उसके ऊपर अमित तेजोराशि प्रज्वलित है। (उस तेजोराशिमें) परममङ्गलमय आसन सुशोभित है। उस (भद्रासनपद्म)-की कर्णिकापर शुद्ध शेषभगवान्का भोगासन सुशोभित है। उसके ऊपर भली प्रकार विराजमान आनन्दपरिपालक आदि-नारायणका ध्यान करके, उन सर्वेश्वरका विविध उपचारोंसे पूजन करता है। फिर प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके, उनकी आज्ञा लेकर और ऊपर-ऊपर जाकर पाँचों वैकुण्ठोंको पार करता है तथा अण्डविराट्के कैवल्यपदको प्राप्त करके, उनकी आराधना करके उपासक परमानन्द प्राप्त करता है'॥ १४॥

॥ पञ्चम अध्याय समाप्त॥ ५॥

षष्ठ अध्याय

मोक्षमार्गके स्वरूपका निरूपण

'तब परमानन्दकी प्राप्ति होनेपर उपासक आवरणसहित ब्रह्माण्डका भेदन करके, चारों ओर देखकर ब्रह्माण्डके स्वरूपका निरीक्षण करता है तथा परमार्थतः उसके स्वरूपको ब्रह्मज्ञानके द्वारा जानकर (समझ जाता है कि) समस्त वेद, शास्त्र, इतिहास, पुराण, समस्त विद्यासमूह, ब्रह्मादि सब देवता और सभी परमर्षि भी ब्रह्माण्डके भीतर स्थित प्रपञ्चके एक देश (एक अङ्ग)-का ही वर्णन करते हैं। (वे सब) ब्रह्माण्डके स्वरूपको नहीं जानते। ब्रह्माण्डसे बाहर स्थित प्रपञ्चके रहस्यको तो जानते ही नहीं। फिर ब्रह्माण्डके भीतर एवं बाहरके प्रपञ्चज्ञानसे दूर मोक्षप्रपञ्च (स्वरूप)-ज्ञान तथा अविद्या-प्रपञ्चज्ञानको तो जान ही कैसे सकते हैं'॥ १॥

'ब्रह्माण्डका स्वरूप कैसा है?'॥ २॥

'वह मुर्गेके अण्डेके समान आकारका महत्तत्त्वादि-समष्टिमय ब्रह्माण्ड तेजोमय, तपे हुए स्वर्णके समान प्रभावाला, उदय होते हुए करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिवाला, चारों प्रकारकी (उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज, जरायुज) सृष्टिसे उपलक्षित पाँचों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाशरूप) महाभूतोंसे ढका हुआ, तथा महत्तत्त्व, अहङ्कार, तम और मूलप्रकृतिसे घिरा हुआ है'॥ ३॥

'अण्डकी भित्ति सवा करोड़ योजन विशाल है। प्रत्येक आवरण उसी प्रमाणका (उतना ही विशाल) है'॥ ४॥

'चारों ओरसे ब्रह्माण्डका प्रमाण दो खरब योजन है। महामण्डूक आदि अनन्त शक्तियोंसे वह अधिष्ठित (धारण किया हुआ) है। श्रीनारायणके खेलनेकी गेंदके समान वह है। परमाणुके समान विष्णुलोकसे चिपका है। किसीके द्वारा न देखी, न सुनी अनेक प्रकारकी अनन्त विचित्रताओंकी विशेषतासे युक्त है'॥ ५॥

'इस ब्रह्माण्डके चारों ओर ऐसे ही दूसरे अनन्त-कोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणोंके साथ प्रकाशित होते हुए अवस्थित हैं'॥ ६॥

'(वे ब्रह्माण्ड) चार मुखोंके, पाँच मुखोंके, छः मुखोंवाले, सात मुखोंके, आठ मुखोंके—इस प्रकार संख्याक्रमसे सहस्र मुखोंतकके, श्रीनारायणके अंशरूप, रजोगुणप्रधान एक-एक सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा)-द्वारा अधिष्ठित हैं। विष्णु, महेश्वर नामवाले, श्रीनारायणके अंशरूप, सत्त्व तथा तमोगुणप्रधान एक-एक स्थिति तथा संहारकर्तासे भी अधिष्ठित हैं। (वे सब ब्रह्माण्ड) विशाल जलप्रवाहमें मत्स्य तथा बुलबुलोंके अनन्त समूहोंकी भाँति घूमते रहते हैं'॥ ७॥

'क्रीड़ामें लगे बालककी हथेलीमें आँवलोंके समूहकी भाँति महाविष्णुकी हथेलीमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड शोभित हो रहे हैं'॥ ८॥

'जलयन्त्र (रहँट)-में लगे घड़ोंकी मालाके समूहकी भाँति महाविष्णुके एक-एक रोमकूपके छिद्रोंमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणोंके साथ घूमते रहते हैं'॥ ९॥

'(उपर्युक्त गति-प्राप्त उपासक) समस्त ब्रह्माण्डोंके

भीतर एवं बाहरके प्रपञ्चके रहस्यको ब्रह्मज्ञानके द्वारा जानकर तथा नाना प्रकारकी विचित्र अनन्त परमैश्वर्यकी समष्टिरूप विशेषोंको भली प्रकार देखकर अत्यन्त आश्चर्यमय अमृतसागरमें गोता लगाता है और निरतिशय आनन्द-समुद्ररूप होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्डसमूहोंको पार कर जाता है। इसी प्रकार अमित, अपरिच्छिन्न तमःसागरको पार करके, मूल अविद्यापुरको देखकर, विविध विचित्र अनन्त महामायाविशेषोंसे घिरी हुई, अनन्त महामायाशक्तियोंकी समष्टिरूपा, अनन्त दिव्य तेजोमय ज्वालामालाओंसे सुशोभित, अनन्त महामायाविलासोंकी परम अधिष्ठानस्वरूपा, निरन्तर अमित आनन्द-पर्वतपर विहार करनेवाली, मूल-प्रकृतिकी जननी अविद्यालक्ष्मीका इस प्रकार (वर्णित रूपसे) ध्यान करता है। फिर विविध उपचारोंसे उनकी आराधना करके, समस्त ब्रह्माण्ड-समष्टिकी जननी भगवान् विष्णुकी महामायाको नमस्कार करके उनसे आज्ञा लेकर और ऊपर-से-ऊपर जाकर महाविराट् पदको पाता है'॥ १०॥

'महाविराट्-स्वरूप कैसा है?' समस्त अविद्यापाद विराट् है। सब ओर आँखोंवाला, सब ओर मुखोंवाला, सब ओर हाथोंवाला तथा सब ओर पैरोंवाला है। हाथोंके द्वारा (हाथवालोंको) तथा पंखोंके द्वारा उड़नेवालोंको युक्त करता है। यह देवता अकेला ही स्वर्ग तथा पृथिवीको उत्पन्न करता है। इसका रूप दृष्टिमें नहीं ठहरता। इसे कोई नेत्रोंसे नहीं देखता। हृदयसे, बुद्धिसे तथा मनसे इसका ध्यान किया जाता है। जो इसको जानते हैं, वे अमृतस्वरूप (मुक्त) हो जाते हैं'॥ ११—१४॥

'(ऐसे) मन तथा वाणीसे अगोचर विराट्स्वरूपका ध्यान करके नाना प्रकारके उपचारोंसे उनकी आराधना करता है तथा उनकी आज्ञा लेकर और ऊपर जाकर विविध विचित्र अनन्त मूल-अविद्याके विलासोंको देखकर उपासक परम आश्चर्यान्वित होता है'॥ १५॥

'वहाँ अखण्ड परिपूर्ण परमानन्दस्वरूप परब्रह्मके समस्त स्वरूपोंमें विरोध प्रदर्शित करनेवाली (सब प्रकारसे विरुद्ध धर्मोंवाली), अपरिच्छिन्न यवनिका (पर्दे)-के आकारवाली, भगवान् विष्णुकी महायोगमाया मूर्तिमान् अनन्त महामायास्वरूपोंसे भली प्रकार सेवित हैं। उनका नगर अत्यन्त कौतुकोंसे पूर्ण, अत्यन्त आश्चर्यसागर, आनन्दस्वरूप, शाश्वत है। अविद्यासागरमें प्रतिबिम्बित नित्य वैकुण्ठके प्रतिबिम्बरूप दूसरे वैकुण्ठकी भाँति (वह) प्रकाशित है'॥ १६॥

'उस पुरमें पहुँचकर, उपासक योगलक्ष्मी अङ्गमायाका ध्यान करके अनेक प्रकारके उपचारोंसे उनकी आराधना करता है तथा उनके द्वारा पूजित होकर और उनकी आज्ञा प्राप्त करके और ऊपर जाता है। वहाँ मायाके अनन्त विलासोंको देखकर वह परम आश्चर्यमें डूब जाता है'॥ १७॥

'उससे ऊपर पादविभूति नामक वैकुण्ठ-नगर शोभित है। अत्यन्त आश्चर्यमय अनन्त ऐश्वर्यका समष्टिस्वरूप, आनन्दरसके प्रवाहोंसे भूषित, चारों ओर अमृत नदीके प्रवाहसे अत्यन्त मङ्गलस्वरूप, ब्रह्मतेजोविशेषस्वरूप अनन्त ब्रह्मवनोंसे चारों ओर घिरा हुआ, अनन्त नित्य-मुक्तोंसे चारों ओर व्याप्त, अनन्त चिन्मय भवनसमूहोंसे भरा हुआ अनादि पादविभूति नामक वैकुण्ठ इस प्रकार सुशोभित है और उसके मध्यमें चिदानन्दपर्वत शोभित है। उस (पर्वत)-के ऊपर निरतिशय आनन्दस्वरूप दिव्य तेजोराशि प्रज्वलित है। उसके मध्यमें परमानन्दरूप विमान प्रकाशित है। उसके भीतर मध्यस्थानमें चिन्मय आसन विराजमान है। उस (आसनरूप) पद्मकी कर्णिकापर निरतिशय दिव्य तेजोराशिके मध्य समासीन आदि-नारायणका ध्यान करके विविध उपचारोंसे उनकी आराधना करता है तथा उनसे पूजित होकर, उनकी आज्ञा लेकर और ऊपर जाता है। आवरणसहित अविद्या-अण्डका भेदन करके, अविद्यापादको पारकर विद्या-अविद्याकी संधि (मध्यस्थान)-में जो विष्वक्सेन-वैकुण्ठ नामक नगर शोभित है (साधक वहाँ पहुँचता है)'॥ १८-१९॥

'अनन्त दिव्य तेजकी ज्वालामालाओंसे चारों ओर निरन्तर प्रज्वलित, अनन्त ज्ञान एवं आनन्दके मूर्तिमान् स्वरूपोंद्वारा चारों ओर घिरा हुआ, शुद्ध ज्ञानरूप विमानावलियोंसे विराजित वह नगर अनन्त आनन्दरूप पर्वतोंसे परम कौतुकमय प्रतीत होता है। उस (पुर)-के मध्यमें कल्याणपर्वतके ऊपर शुद्ध आनन्दरूप विमान शोभित है। उसके भीतर दिव्य मङ्गलमय आसन विराजमान है। उस (आसनरूप) पद्मकी कर्णिकापर ब्रह्म-तेजोराशिके मध्यमें समासीन भगवान्के अनन्त ऐश्वर्यस्वरूप, विधि-निषेधके परिपालक, समस्त प्रवृत्तियों एवं सम्पूर्ण कारणोंके कारणस्वरूप, निरतिशय आनन्दलक्षण, महाविष्णुस्वरूप, समस्त मोक्षोंके परिपालक, अमितपराक्रमी—इस प्रकारके श्रीविष्वक्सेनजीका ध्यान करके, प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करता है। फिर विविध

उपचारोंसे (उनकी) पूजा करके, उनकी आज्ञा लेकर, और ऊपर जाकर उपासक विद्याविभूतिको प्राप्त करता है तथा विद्यामय, चारों ओर स्थित ब्रह्मतेजोमय अनन्त वैकुण्ठोंको देखकर परमानन्द प्राप्त करता है'॥ २०॥

'(वहाँसे आगे) विद्यामय अनन्त समुद्रोंको पार करके ब्रह्मविद्या नदीको पाकर (उसके पार पहुँचकर) वहाँ स्नान करके, भगवान्‌का ध्यान करते हुए उपासक पुनः गोता लगाता है और मन्त्रमय शरीरको छोड़कर, विद्यानन्दमय अमृत दिव्य शरीर ग्रहण करता है। इस प्रकार नारायणकी सरूपता (उनके-जैसा विग्रह) प्राप्त करके, आत्माकी पूजा करता है, फिर नित्यमुक्त सभी वैकुण्ठवासियोंद्वारा भलीभाँति पूजित होकर, आनन्द-रससे भरपूर ब्रह्मविद्या-प्रवाहोंसे, अनन्त क्रीडानन्द नामक पर्वतोंसे चारों ओर व्याप्त, ब्रह्म-विद्यामय सहस्रों प्राचीरोंसे तथा आनन्दामृतसे पूर्ण स्वाभाविक दिव्य गन्धसे युक्त चिन्मय अनन्त ब्रह्मवनोंसे अत्यन्त शोभित—इस प्रकारके ब्रह्मविद्या-वैकुण्ठमें उपासक प्रवेश करता है। उसके भीतर अवस्थित अत्यन्त उन्नत बोधानन्दमय भवनके अग्र (सम्मुख)-भागमें स्थित प्रणवरूप विमानके ऊपर विराजमान अपार ब्रह्मविद्या-साम्राज्यकी अधिष्ठातृदेवी, अपने अमोघ मन्दकटाक्षसे अनादि मूल-अविद्याको नष्ट कर देनेवाली, एकमात्र अद्वितीया, अनन्त मोक्षसाम्राज्य-लक्ष्मीका इस प्रकार ध्यान करके, प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके अनेक प्रकारके उपचारोंसे उनकी आराधना करता है। फिर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके, विशिष्ट स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करके, उनके द्वारा भलीभाँति पूजित होकर, उनकी आज्ञा लेकर उन्हींके साथ और ऊपर जाता है। वहाँ ब्रह्मविद्याके तटपर पहुँचकर, ज्ञान एवं आनन्दमय अनन्त वैकुण्ठोंको देखकर, निरतिशय आनन्द प्राप्त करता है तथा ज्ञानानन्दमय अनन्त समुद्रोंको पार करके, ब्रह्मवनोंमें तथा परम मङ्गलमय पर्वत-शिखरपर बराबर चलते हुए, ज्ञानानन्दरूप विमानोंकी क्रमबद्ध पङ्क्तियोंमें (पहुँचकर) उपासक परमानन्द लाभ करता है'॥ २१॥

'उसके बाद तुलसी नामका वैकुण्ठ-नगर प्रकाशित है। वह परम कल्याणरूप, अनन्त ऐश्वर्ययुक्त, अमित तेजोराशिस्वरूप, अनन्त ब्रह्मतेजोराशिका समष्टिस्वरूप, चिदानन्दमय अनेक प्राकार-विशेषों (चहारदीवारियों)-से घिरा हुआ, अमितबोधमय आनन्दपर्वतके ऊपर स्थित, बोधानन्द-नदीके प्रवाहसे अत्यन्त मङ्गलमय, निरतिशयानन्दस्वरूप अनन्त तुलसी-वनोंसे अत्यन्त शोभित, सम्पूर्ण पवित्रोंमें परम पवित्र, चित्स्वरूप, अनन्त नित्यमुक्त पुरुषोंसे अत्यधिक संकुल तथा आनन्दमय अनन्त विमान-समूहोंसे सुशोभित, अमित तेजोराशिके अन्तर्गत दिव्य तेजःस्वरूप है'॥ २२॥

'उपासक ऐसे आकारवाले तुलसी-वैकुण्ठमें प्रवेश करके, उसके भीतर दिव्य विमानके ऊपर विराजमान, सर्वपरिपूर्ण महाविष्णुके सर्वाङ्गोंमें विहार करनेवाली, निरतिशय सौन्दर्यलावण्यकी अधिष्ठात्री देवी, बोधानन्दमय अनन्त नित्य परिजनोंसे परिसेविता, महालक्ष्मीकी सखी श्रीतुलसी-लक्ष्मीका इस प्रकार ध्यानकर, उनकी प्रदक्षिणा तथा (उन्हें) नमस्कार करता है तथा अनेक प्रकारके उपचारोंसे उनकी पूजा करके, स्तोत्रविशेषसे स्तुति करता है। फिर उनके द्वारा भली प्रकार पूजित होकर तथा वहाँके निवासियोंद्वारा भलीभाँति पूजित होकर, उनकी आज्ञा पाकर और ऊपर-ऊपर जाकर परमानन्द नदीके किनारे पहुँचता है। वहाँ चारों ओर स्थित शुद्ध ज्ञानानन्दमय अनन्त वैकुण्ठोंको देखकर, निरतिशय आनन्द प्राप्त करता है तथा वहींके निवासी चिद्रूप (ज्ञानस्वरूप) पुराणपुरुषोंद्वारा भली प्रकार पूजित होता है। आगे दिव्य गन्ध एवं आनन्दमय पुष्पवृष्टिसमन्वित दिव्य मङ्गल-भवन ब्रह्मवनोंमें, अमित तेजोराशिस्वरूप एवं तरङ्गमालाओंसे परिपूर्ण निरतिशय आनन्दरूप अमृतके सागरोंमें, फिर अनन्त शुद्ध ज्ञानस्वरूप विमान-समुदायोंसे भरे आनन्दगिरिके शिखरसमूहोंमें बराबर चलते हुए उपासक वहाँसे भी ऊपर-ऊपर विमानपङ्क्तियों तथा अनन्त तेजोमय पर्वतपङ्क्तियोंमें चलकर, इस क्रमसे विद्यापाद तथा आनन्दपादकी संधि (मध्यस्थान)-में पहुँचता है। वहाँ आनन्दनदीके प्रवाहमें स्नान करके, बोधानन्द-वनमें पहुँचकर (देखता है कि) वहाँ अमृतमय पुष्पोंकी निरन्तर वर्षासे युक्त शुद्धबोधमय परमानन्द-स्वरूप वन है। परमानन्दरूप प्रवाहोंसे (वह वन चारों ओर) व्याप्त है। मूर्तिमान् परम मङ्गलोंसे परमाश्चर्यस्वरूप हो रहा है। वह अपार आनन्द-सिन्धुरूप है। क्रीडानन्द नामक पर्वतोंद्वारा सब ओर शोभित है। उसके बीचमें शुद्ध बोधानन्दमय वैकुण्ठ है। यही ब्रह्मविद्यापादका वैकुण्ठ है, जो सहस्रों आनन्द-प्राचीरोंसे प्रज्वलित (भलीभाँति प्रकाशमान) है। वह अनन्त आनन्दरूप विमानसमूहोंसे भरा हुआ, अनन्त बोधमयविशेष भवनोंसे चारों ओर निरन्तर जगमगाता हुआ अनन्त क्रीडा-मण्डपोंसे

युक्त, बोध-आनन्दमय, अनन्त श्रेष्ठ छत्र, ध्वजाएँ, चँवर, वितान (चँदोवे) तथा द्वारोंसे अलंकृत, परमानन्द-व्यूहरूप (घनीभूत परमानन्दविग्रह) नित्य-मुक्तोंद्वारा चारों ओरसे व्याप्त, अनन्त दिव्यतेजोमय पर्वतोंका समष्टिरूप, अपरिच्छिन्न अनन्त शुद्धबोधमय आनन्दका मण्डल, वाणीसे अगोचर (अवर्ण्य), आनन्दमय ब्रह्मतेजोराशि-मण्डल, अखण्ड तेजोमण्डलरूप, शुद्धानन्दस्वरूपका समष्टि-मण्डलरूप, अखण्ड चिद्घनानन्द-स्वरूप है'॥ २३॥

'उपासक इस प्रकारके बोधानन्दमय वैकुण्ठमें प्रवेश करके, वहाँके सभी निवासियोंद्वारा भलीभाँति पूजित होता है। परमानन्द पर्वतपर अखण्ड बोधरूप विमान प्रकाशमय रूपमें स्थित है। उसके भीतर चिन्मय आसन विराजमान है। उस (आसन)-के ऊपर अखण्ड आनन्दमय तेजोमण्डल सुशोभित है। उसके मध्यमें समासीन आदिनारायणका ध्यान करके, प्रदक्षिणा एवं नमस्कार करके, उपासक विविध प्रकारके उपचारोंसे उनकी भली प्रकार पूजा करता है तथा पुष्पाञ्जलि निवेदित करके, स्तोत्र-विशेषसे स्तुति करता है। अपने (नारायण) स्वरूपसे अवस्थित उपासकको देखकर, उस उपासकको आदि-नारायण अपने सिंहासनपर भली प्रकार बैठाकर, उस वैकुण्ठके सभी निवासियोंके साथ समस्त मोक्ष-साम्राज्यके पट्टाभिषेक (राजतिलक)-के उद्देश्यसे उसे मन्त्रोंद्वारा पवित्र किये हुए आनन्दस्वरूप कलशोंके (जल) द्वारा स्नान कराते हैं तथा दिव्य मङ्गलस्वरूप महावाद्योंके (घोषके) साथ नाना प्रकारके उपचारोंसे उसकी भली प्रकार अर्चा करते हैं। फिर अपने सभी मूर्तिमान् अलङ्कारोंसे अलङ्कृत करके, (उसकी) प्रदक्षिणा तथा (उसको) नमस्कार करते हैं और 'तुम ब्रह्म हो। मैं ब्रह्म हूँ। हम दोनोंमें अन्तर नहीं है। तुम्हीं 'मैं' (मेरे स्वरूप) हो। मैं ही तुम (तुम्हारा स्वरूप) हूँ।' यों उच्चारणकर (दीक्षा देकर), यों कहकर (उसका तत्त्व प्रत्यक्ष कराके) उस समय आदिनारायण अन्तर्हित हो जाते हैं'॥ २४-२५॥

॥ षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय

महानारायण-यन्त्रका वर्णन

'[भगवान् नारायणके पुनः प्रकट होनेपर] उपासक उनकी आज्ञासे नित्य गरुडपर चढ़कर, समस्त वैकुण्ठवासियोंसे घिरा हुआ, महासुदर्शनको आगे करके, विष्वक्सेनद्वारा परिपालित (रक्षित) हो, ऊपर-ऊपर जाकर ब्रह्मानन्दविभूतिमें पहुँच जाता है। वहाँ वह सर्वत्र स्थित ब्रह्मानन्दमय अनन्त वैकुण्ठोंका दर्शन करता है; फिर निरतिशय आनन्द-समुद्ररूप होकर वह आत्माराम, आनन्दविभूतिस्वरूप अनन्त पुरुषोंको देखता और उन सबका उपचारोंसे भलीभाँति अर्चन करता है। फिर उन सबसे भी पूजित होकर उपासक, वहाँसे ऊपर-ऊपर जाते हुए, ब्रह्मानन्दविभूतिमें पहुँच जाता है। तत्पश्चात् अनन्त दिव्य तेजोमय पर्वतोंसे अलङ्कृत, परमानन्दरूप तरङ्गमालाओंसे शोभित असंख्य आनन्द-समुद्रोंको पार करके तथा विविध विचित्र अनन्त परमतत्त्व-विभूति-समष्टिस्वरूपोंको एवं परमाश्चर्यरूप ब्रह्मानन्दविभूति-स्वरूपोंको भी अतिक्रमण करके उपासक परमाश्चर्यमें डूब जाता है'॥ १॥

'इसके पश्चात् सुदर्शन नामक वैकुण्ठ नगर प्रकाशित होता है। वह नित्य मङ्गलरूप, अनन्त वैभवपूर्ण, सहस्रों आनन्दरूप प्राचीरों (चहारदीवारियों)-से घिरा, दस सहस्र कक्षोंसे युक्त, अनन्त उत्कट प्रज्वलित (प्रकाशमय) अरोंके मण्डलसे युक्त, निरतिशय दिव्य तेजोमण्डलरूप, देवताओंके लिये भी परमानन्दस्वरूप, शुद्ध-बुद्धस्वरूप, अनन्त आनन्दरूप विद्युत्के परम विलासके समान प्रकाशमान, निरतिशय परमानन्दसागर तथा अनन्त चिद्रूप (ज्ञानमूर्ति) आनन्दमय पुरुषोंसे अधिष्ठित है'॥ २॥

''उसके मध्यमें सुदर्शन नामक महाचक्र है। 'वह (नित्य) गतिशील, पवित्र, विस्तृत एवं पुरातन है, जिसके द्वारा पवित्र होकर मनुष्य पापोंसे तर जाता है—उस पवित्र, शुद्ध, परमपावन चक्रके द्वारा पवित्र होकर हम अतिपापरूप शत्रुको पार कर जायँगे। वह गतिशील चक्र भगवद्धामका द्वाररूप है; वह ज्वालाओंसे परिपूर्ण, पवित्र, ज्योतिर्मय, अतिशय प्रकाशमान, अत्यन्त तेजस्वी तथा अमृतकी असंख्य धाराओंको स्रवित करनेवाला चक्र हमको लोकमें सुबुद्धियुक्त बनाये।' [श्रुति इस प्रकार जिसकी स्तुति करती है, वह] दस सहस्र अरोंसे युक्त, प्रज्वलित, दस सहस्र अरोंका समष्टिरूप एवं निरतिशय पराक्रमका विलास

है, वह अनन्त दिव्यायुधों एवं दिव्य शक्तियोंका समष्टिरूप, महाविष्णुका मूर्तिमान् अमोघ प्रताप अयुतायुत-कोटि योजन विशाल, अनन्त ज्वाला-मालाओंसे अलङ्कृत, समस्त दिव्य मङ्गलोंका निदान (आदिकारण) तथा अनन्त दिव्य तीर्थोंका निज मन्दिरस्वरूप सुदर्शन महाचक्र इस प्रकार प्रज्वलित होता रहता है''॥ ३—६॥

'उस (चक्र)-के नाभिमण्डलस्थानमें निरतिशय आनन्दमयी दिव्य तेजोराशि लक्षित होती है। उसके मध्यमें सहस्रारचक्र प्रज्वलित है। वह (सहस्रारचक्र) अखण्ड दिव्य तेजोमण्डलके आकारका तथा परमानन्दमय विद्युत्-पुञ्जके समान उज्ज्वल है। उसके मध्यमें छः सौ अरोंका चक्र प्रज्वलित है। उसका भी स्वरूप अमित, परम तेजोमय, श्रेष्ठविहारका स्थान एवं विज्ञानका घनीभूत पुञ्ज है। उसके मध्यमें तीन सौ अरोंवाला चक्र प्रकाशित है। वह भी परम कल्याणका विलासस्वरूप तथा अनन्त चिन्मय सूर्योंका समष्टिरूप है। उसके भीतर सौ अरोंका चक्र प्रकाशमान है। वह भी परम तेजोमण्डलरूप है। उसके बीचमें साठ अरोंका चक्र प्रकाशित है। वह ब्रह्मतेजका परम विलासरूप है। उसके भीतरी भागमें षट्कोणचक्र प्रज्वलित है। वह अपरिच्छिन्न अनन्त दिव्य तेजोराशिस्वरूप है। उसके भीतर महानन्दपद शोभित है। उसकी कर्णिकामें चिन्मय सूर्य, चन्द्र तथा अग्निके मण्डल प्रज्वलित हैं। वहाँ निरतिशय दिव्य तेजोराशि दिखायी पड़ती है। उसके भीतरी भागमें एक साथ उदित अनन्तकोटि सूर्योंके समान प्रकाशमय सुदर्शन-पुरुष विराजमान हैं। सुदर्शन-पुरुष महाविष्णु ही हैं; क्योंकि वे महाविष्णुके समस्त असाधारण चिह्नोंसे चिह्नित हैं'।

'उपासक इस प्रकार सुदर्शन-पुरुषका ध्यान करके अनेक प्रकारके उपचारोंसे उनकी आराधना करके प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करता है; फिर वह उपासक उनके द्वारा भी भली प्रकार पूजित होकर, उनकी आज्ञा प्राप्त कर ऊपर-ऊपरको जाता हुआ परमानन्दमय अनन्त वैकुण्ठोंको देखकर परमानन्द प्राप्त करता है'॥ ७—१५॥

'उससे ऊपर विविध विचित्र अनन्त चिद्विलासमय विभूतिस्वरूपोंको पार करके तथा अनन्त परमानन्द-विभूतिके समष्टिरूप अनन्त निरतिशय आनन्द-समुद्रोंको लाँघकर उपासक क्रमशः अद्वैत-संस्थान (धाम)-को प्राप्त होता है'॥ १६॥

'अद्वैत-संस्थान (कैवल्यधाम) कैसा है? अखण्ड आनन्दस्वरूप, अनिर्वचनीय, अमितबोधसागर, अपार आनन्दका समुद्र, विजातीय विशेषताओं (विशेषों)-से रहित, सजातीय विशेषताओंसे युक्त, निरवयव, निराधार, निर्विकार, निरञ्जन, अनन्त, ब्रह्मानन्द-समष्टिका घनीभाव, परमचिद्विलासका समष्टिस्वरूप, निर्मल, निष्कलङ्क एवं दूसरे किसीके आश्रयसे रहित है। अत्यन्त निर्मल अनन्तकोटि सूर्योंके प्रकाश उसके सम्मुख एक चिनगारीके समान हैं; जो अनन्त उपनिषदोंका अर्थस्वरूप, समस्त प्रमाणोंसे अतीत, मन एवं वाणीका अविषय और नित्यमुक्तस्वरूप है। उसका कोई आधार नहीं है; वह आदि-मध्य-अन्तरहित, कैवल्यरूप, परम शान्त, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतर, महान्से भी परम महान्, अमित आनन्दस्वरूप, शुद्ध-बोध-आनन्द-ऐश्वर्यरूप, अनन्त आनन्दमय स्वरूपोंका समष्टिरूप, अविनाशी अनिर्देश्य, कूटस्थ (निर्विकार), अचल, ध्रुव, दिशा-देश एवं कालसे रहित, भीतर और बाहरसे भी सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके परिपूर्ण, परम योगियोंद्वारा अन्वेषणीय, देश-काल तथा वस्तुके परिच्छेदसे रहित, निरन्तर नूतन, नित्य परिपूर्ण, अखण्ड आनन्द अमृतरूप, शाश्वत, परमपद, निरतिशय आनन्दमय अनन्त विद्युत्पर्वतोंके समान, अद्वितीय तथा अपने ही प्रकाशसे निरन्तर प्रकाशित है। (वहाँ) परमानन्दस्वरूप अपरिच्छिन्न अनन्त परम ज्योति, जो शाश्वत है, निरन्तर प्रकाशमान है'॥ १७-१८॥

'उसके भीतर बोधानन्द-महोज्ज्वल, नित्य मङ्गल-मन्दिर, चिन्मय समुद्रके मन्थनसे उत्पन्न चित्साररूप, अनन्त आश्चर्योंका सागर, अमित तेजोराशिके अन्तर्गत विशेष तेजःस्वरूप, अनन्त आनन्द-प्रवाहोंसे अलङ्कृत निरतिशय आनन्द-सागरस्वरूप, निरुपम, नित्य, निर्दोष, निरतिशय, निस्सीम तेजोराशिरूप, निरतिशय आनन्दस्वरूप सहस्रों प्राकारों (चहारदीवारियों)-से अलङ्कृत, शुद्ध बोधमय भवनसमूहोंसे भूषित, चिदानन्दमय अनन्त दिव्य उपवनोंसे सुशोभित, निरन्तर होनेवाली अपार पुष्पवर्षासे चारों ओरसे व्याप्त धाम है। वही त्रिपाद्विभूति वैकुण्ठ-स्थान है।'

'वही परम कैवल्य है। वही अबाधित परमतत्त्व है। वही अनन्त उपनिषदोंद्वारा अन्वेषणीय पद है। वही समस्त परमयोगियों तथा मुमुक्षुओंद्वारा चाहा जाता है। वही घनीभूत सत् है। वही घनीभूत चित् है। वही घनीभूत आनन्द है। वही घनीभूत शुद्धबोधरूप अखण्ड आनन्दमय ब्रह्मचैतन्यका

अधिदेवता-स्वरूप है। सबका अधिष्ठान, अद्वय परब्रह्मका विहार-मण्डल, निरतिशय आनन्दरूप तेजोमण्डल, अद्वैत परमानन्दरूप परब्रह्मका परम अधिष्ठानरूप मण्डल, निरतिशय परमानन्दका परममूर्तस्वरूप मण्डल, अनन्त श्रेष्ठ मूर्तियोंका समष्टिरूप मण्डल, निरतिशय परमानन्दरूप-स्वरूप परमब्रह्मकी परममूर्तिरूप परमतत्त्वके विलासका स्वरूपभूत मण्डल, बोधानन्दमय अनन्त परम विलासोंकी विभूतियोंका समष्टिरूप मण्डल, अनन्त चिद्विलासकी विभूतियोंका समष्टिरूप मण्डल, अखण्ड शुद्ध चैतन्यका निजमूर्तिरूप विग्रह, वाणीके अगोचर अनन्त शुद्धबोधका विग्रहरूप, अनन्त आनन्दसमुद्रोंका समष्टिरूप, अनन्त बोधस्वरूप पर्वतों तथा अनन्त बोधानन्दरूप पर्वतोंसे अधिष्ठित, निरतिशय आनन्द एवं परम मङ्गलमय स्वरूपोंका समष्टिरूप, अखण्ड अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्मकी परममूर्तिके परम तेज:पुञ्जका पिण्डरूप, चिद्रूप (ज्ञानस्वरूप) सूर्यका मण्डलरूप तथा बत्तीस विभिन्न व्यूहोंसे अधिष्ठित है। केशवादि चौबीस व्यूह, सुदर्शन आदिके न्यास-मन्त्र, सुदर्शनादि यन्त्रोंका उद्धार, अनन्त-गरुड़-विष्वक्सेनादि (पार्षद) तथा निरतिशय आनन्दरूप भी उसीमें हैं'॥ १९-२०॥

'उपर्युक्त आनन्द-व्यूहके बीचमें सहस्रकोटि योजन विस्तीर्ण उन्नत चिन्मय प्रासाद है। (वह) ब्रह्मानन्दमय करोड़ों विमानसे युक्त एवं अत्यन्त मङ्गलस्वरूप है। अनन्त उपनिषदोंके अर्थस्वरूप उपवन-समुदायोंसे भरा है। सामवेदरूपी हंसोंके कलनादसे उसकी अत्यन्त शोभा होती है। आनन्दमय अनन्त शिखरोंसे वह अलङ्कृत है। चिदानन्द-रसके झरनोंसे व्याप्त है। अखण्डानन्दरूप तेजोराशिके भीतर स्थित है। अनन्त आनन्दमय आश्चर्योंका समुद्र है। उसके भीतरी भागमें निरतिशय आनन्दस्वरूप प्रणव नामक विमान है, जिसका प्राकार अनन्तकोटि सूर्योंके प्रकाशसे भी अतिशय प्रकाशमय है (वह विमान) आनन्दमय शतकोटि शिखरोंसे जगमगा रहा है। उसके भीतर बोधानन्द-पर्वतके ऊपर अष्टाक्षरीमण्डप सुशोभित है। उस (मण्डप)-के मध्यमें आनन्दवनसे विभूषित चिदानन्दमयी वेदिका है। उसके ऊपर निरतिशयानन्दस्वरूप तेजोराशि प्रज्वलित हो रही है। उसके भीतर अष्टाक्षरी पद्मसे विभूषित चिन्मय आसन विराजमान है। उस (आसनरूप पद्म)-की प्रणवरूपी कर्णिकापर चिन्मय सूर्य, चन्द्र तथा अग्निके मण्डल (क्रमश: एकके ऊपर एक) प्रज्वलित हैं। वहाँ अखण्ड आनन्दरूप तेजोराशिके भीतर परम मङ्गलाकार अनन्तासन विराजमान है। उसके ऊपर महायन्त्र प्रज्वलित है। निरतिशय ब्रह्मानन्दकी परममूर्तिरूप वह महायन्त्र समस्त ब्रह्मतेजकी राशिका समष्टिस्वरूप, चित्स्वरूप, निर्मल, परब्रह्मस्वरूप एवं परब्रह्मका परम रहस्यमय कैवल्यरूप है। महायन्त्रमय परम वैकुण्ठका यह नारायणयन्त्र विजयी होता है'॥ २१—२९॥

'उसका स्वरूप कैसा है?' शिष्यके इस प्रकार पूछनेपर गुरु 'वह ऐसा है' कहकर (यन्त्रका स्वरूप) बतलाते हैं—"पहले षट्कोणचक्र बनाना चाहिये। उसके मध्यमें छ: दलोंका कमल अङ्कित करे। उस कमलकी कर्णिकापर प्रणव (**ॐ**) लिखे। प्रणवके बीचमें नारायणका बीज-मन्त्र (**अं**) लिखे। वह बीज-मन्त्र साध्यगर्भित होना चाहिये। अर्थात् उसके साथ जिस उद्देश्यसे यन्त्र-पूजा करनी हो, उसका सूचक '**मम सर्वाभीष्टसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा**' यह वाक्य लिखना चाहिये*। कमलके दलोंपर विष्णु एवं नृसिंहके षडक्षर-मन्त्रोंको लिखना चाहिये।† विष्णुषडक्षर-मन्त्र '**ॐ विष्णवे नमः**' और नृसिंह-षडक्षर मन्त्र '**ऐं क्लीं श्रीं ह्रीं क्ष्रौं फट्**' है। दल-कपोलोंमें (दो दलोंके मध्यमें) श्रीराम तथा श्रीकृष्णके षडक्षर मन्त्रोंको लिखे। राम-षडक्षर-मन्त्र '**रां रामाय नमः**' और कृष्ण-षडक्षर मन्त्र '**क्लीं कृष्णाय नमः**' है। षट्कोणचक्रके छ: कोणोंमें '**सहस्रार हुं फट्**' यह सुदर्शन-षडक्षर-मन्त्र लिखे। छहों कोण-कपोलोंमें (दो कोनोंके मध्य अर्थात् रेखाओंके सामने बाहर) '**ॐ नमः शिवाय**' यह प्रणव-युक्त शिव-पञ्चाक्षर मन्त्र लिखे"॥ ३०॥

"उस (षट्कोणचक्र)-के बाहर प्रणवको इस प्रकार मालाकी भाँति लिखे कि वृत्त बन जाय। वृत्तके

---

* 'मम' यह पद अथवा साधकका षष्ठ्यन्त नाम बीज-मन्त्रके ऊपर होगा 'सर्वाभीष्टसिद्धिम्' यह पद बीज-मन्त्रके नीचे होगा। बीजके वामपार्श्वमें 'कुरु कुरु' लिखा जायगा और दक्षिणपार्श्वमें 'स्वाहा' रहेगा।

† इस प्रकार जहाँ भी मन्त्र लिखनेका वर्णन आता है, वहाँ मन्त्रका एक-एक अक्षर एक-एक दलपर, दलोंके मध्यमें या कोणपर—जहाँ लिखे हैं—क्रमश: लिखने चाहिये। एक मन्त्रको लिखकर उसके अक्षरोंके नीचे दूसरे मन्त्रके अक्षरोंको उसी प्रकार लिखना चाहिये। इस प्रकार जितने मन्त्र लिखने हों, उनके अक्षरोंको क्रमश: एकके नीचे एक लिखता जाय। संयुक्ताक्षरोंको एक ही अक्षर मानकर लिखे।

बाहर अष्टदल कमल बनाये। उसके दलोंपर '**ॐ नमो नारायणाय**' यह नारायण-अष्टाक्षर-मन्त्र और '**जय जय नरसिंह**' यह नृसिंह-अष्टाक्षर-मन्त्र लिखे। दलोंके बीचके स्थानोंपर राम, कृष्ण तथा श्रीकरके अष्टाक्षर-मन्त्र लिखे। मन्त्र क्रमशः ये हैं—'**ॐ रामाय हुं फट् स्वाहा**' '**क्लीं दामोदराय नमः**', '**उत्तिष्ठ श्रीकर स्वाहा**'॥ ३१॥

"उस (अष्टदल कमल)-के बाहर प्रणवके मालाकी तरह लिखते हुए वृत्ताकार बना दे। वृत्तके बाहर नौ दलोंका कमल बनाये। कमलके दलोंमें (क्रमशः) राम, कृष्ण एवं हयग्रीवके नवाक्षर-मन्त्र लिखे। मन्त्र क्रमशः ये हैं—'**ॐ रामचन्द्राय नमः ॐ**', '**क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय क्लीं**', '**ह्सौं हयग्रीवाय नमः ह्सौं।**' दलोंके मध्यमें '**ॐ दक्षिणामूर्तिरीश्वरोम्**' यह दक्षिणामूर्ति-नवाक्षर-मन्त्र लिखे"॥ ३२॥

"उसके बाहर नारायण-बीज (**अं**)-से युक्त (अर्थात् **अं अं** लिखते हुए) वृत्त बनाये। वृत्तसे बाहर दस दलोंका कमल बनाये। उन दलोंपर राम तथा कृष्णके दशाक्षर-मन्त्र लिखे। वे मन्त्र ये हैं—'**हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा**', '**गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**'। दलोंके संधिस्थानोंमें '**ॐ नमो भगवते श्रीमहानृसिंहाय कालदंष्ट्रवदनाय मम विघ्नान् पच पच स्वाहा**' यह नृसिंह-माला-मन्त्र लिखे"॥ ३३॥

"दस दल कमलके बाहर नृसिंहके एकाक्षर-मन्त्र '**क्ष्रौं**' के द्वारा वृत्त बनाये। वृत्तके बाहर बारह दलोंका कमल बनाये। दलोंपर नारायण तथा वासुदेवके द्वादशाक्षर-मन्त्र लिखे। मन्त्र क्रमशः ये हैं—'**ॐ नमो भगवते नारायणाय**', '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**' दलोंके कपोलोंमें (क्रमशः) महाविष्णु, श्रीराम तथा श्रीकृष्णके द्वादशाक्षर मन्त्र लिखे। मन्त्र इस प्रकार हैं—'**ॐ नमो भगवते महाविष्णवे**', '**ॐ ह्रीं भरताग्रज राम क्लीं स्वाहा**', '**श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय नमः**'॥ ३४॥

"उसके बाहर जगन्मोहन बीज-मन्त्र '**क्लीम्**' से वृत्त बनाये। वृत्तसे बाहर चौदह दलोंका कमल बनाये। उन दलोंपर (क्रमशः) लक्ष्मीनारायण, हयग्रीव, गोपाल तथा दधिवामनके मन्त्रोंको लिखे। मन्त्र ये हैं—'**ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीं लक्ष्मीवासुदेवाय नमः**', '**ॐ नमः सर्वकोटिसर्वविद्याराजाय**', '**क्लीं कृष्णाय गोपालचूडामणये स्वाहा**', '**ॐ नमो भगवते दधिवामनाय ॐ।**' दो दलोंके सन्धि-स्थानोंपर '**ह्रीं पद्मावत्यन्नपूर्णे माहेश्वरि स्वाहा**' यह अन्नपूर्णेश्वरी-मन्त्र लिखे"॥ ३५॥

"उसके बाहर केवल प्रणवसे एक वृत्त बनाये। वृत्तसे बाहर सोलह दलोंका कमल बनाये। उसके दलोंपर श्रीकृष्ण तथा सुदर्शनके षोडशाक्षर-मन्त्रोंको लिखे। मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं—'**ॐ नमो भगवते रुक्मिणीवल्लभाय स्वाहा**', '**ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्।**' उसके दलोंके सन्धि-भागोंमें सब स्वर तथा सुदर्शन-माला-मन्त्र लिखे। पूरा मन्त्र यह है—'**सुदर्शनमहाचक्राय दीप्तरूपाय सर्वतो मां रक्ष रक्ष सहस्त्रार हुं फट् स्वाहा।**' (पहले एक-एक स्वर लिखा जायगा, फिर स्वरोंके नीचे क्रमशः प्रत्येक दलपर मन्त्रके दो-दो अक्षर जैसे प्रथम दलपर '**सुद**' दूसरे पर '**र्शन**' इस प्रकार लिखे जायँगे)"॥ ३६॥

"उसके बाहर वराह-बीजसे युक्त वृत्त रहेगा। वह बीज '**हुं**' है। वृत्तसे बाहर अठारह दलोंका कमल बनाये। उन दलोंपर श्रीकृष्ण तथा वामनके अष्टादशाक्षर-मन्त्र लिखे। मन्त्र क्रमशः इस प्रकार हैं—'**क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा**', '**ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा।**' दलोंके सन्धि-स्थानोंपर गरुड-पञ्चाक्षर-मन्त्र और गरुड-माला-मन्त्र लिखे। मन्त्र क्रमशः ये हैं—'**क्षिप ॐ स्वाहा**', '**ॐ नमः पक्षिराजाय सर्वविषभूतरक्षःकृत्यादिभेदनाय सर्वेष्टसाधकाय स्वाहा।**' (इसमें पहले दलपर '**क्षिप**', दूसरेपर '**ॐ**' तीसरेपर '**स्वाहा**', चौथेपर '**ॐ नमः**', पाँचवेंपर '**पक्षि**', छठेपर '**राजाय**' और शेषपर शेष मन्त्रभागके दो-दो अक्षर लिखे जायँगे)"॥ ३७॥

"उसके बाहर '**ह्रीं**' इस माया-बीजसे वृत्त बनाये। उसके बाहर फिर अष्टदल कमल बनाये। उन दलोंपर श्रीकृष्ण तथा वामनके अष्टाक्षर-मन्त्र '**ॐ नमो दामोदराय**' और '**ॐ वामनाय नमः ॐ**' इनको (क्रमशः) लिखे। दलोंके सन्धि-स्थलोंपर नीलकण्ठके त्र्यक्षर तथा गरुडके पञ्चाक्षर मन्त्रोंको (पहले तीन दलोंपर पहलेका एक-एक अक्षर, फिर शेषपर दूसरेका एक-एक अक्षर—इस प्रकार) लिखे। मन्त्र ये हैं—'**प्रें रीं ठः, नमोऽण्डजाय**"॥ ३८॥

"उसके बाहर कामदेवके बीज-मन्त्र (**क्लीं**)-से वृत्त बनाये। वृत्तसे बाहर चौबीस दलोंका कमल निर्मित करे। उन दलोंपर शरणागत-मन्त्र एवं नारायण-मन्त्र

(पहले एक-एक अक्षरके क्रमसे शरणागत-मन्त्र और शेष दलोंपर नारायण-मन्त्रके अक्षर) तथा नारायण एवं हयग्रीवके गायत्री-मन्त्र (क्रमशः) लिखे। मन्त्र इस प्रकार हैं—'**श्रीमन्नारायणचरणौ शरणं प्रपद्ये**', '**श्रीमते नारायणाय नमः**', '**नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्**' '**वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्।**' उसके दलोंके सन्धि-भागोंमें नृसिंह-गायत्री, सुदर्शन-गायत्री तथा ब्रह्मगायत्री-मन्त्र (क्रमशः) लिखे। मन्त्र ये हैं—'**वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नः सिंहः प्रचोदयात्**', '**सुदर्शनाय विद्महे हेतिराजाय धीमहि तन्नश्चक्रः प्रचोदयात्**' '**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्**'॥ ३९॥

"उसके बाहर '**ह्सौं**' इस हयग्रीवके एकाक्षर बीज-मन्त्रसे वृत्त बनाये। उसके बाहर बत्तीस दलोंका कमल बनाये। उसके दलोंपर (क्रमशः) नृसिंह एवं हयग्रीवके अनुष्टुप् मन्त्रोंको लिखे।" मन्त्र ये हैं—

उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम्।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥
ऋग्यजुःसामरूपाय वेदाहरणकर्मणे।
प्रणवोद्गीथवपुषे महाश्वशिरसे नमः॥

"दलोंके सन्धि-भागोंमें (क्रमशः) राम तथा कृष्णके अनुष्टुप्-मन्त्र लिखे—"

रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥
देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥

"उसके बाहर प्रणवसे सम्पुटित अग्निबीज (**ॐ रमोम्**)-से वृत्त बनाये। वृत्तसे बाहर छत्तीस दलोंका कमल बनाये। उसके दलोंपर हयग्रीवका छत्तीस अक्षरोंवाला और फिर (उसके नीचे) अड़तीस अक्षरोंवाला मन्त्र लिखे।" मन्त्र क्रमशः यों हैं—

'**हंसः**' **विश्वोत्तीर्णस्वरूपाय चिन्मयानन्दरूपिणे।**
तुभ्यं नमो हयग्रीव विद्याराजाय विष्णवे 'सोऽहम्'॥

'**ह्सौं ॐ नमो भगवते हयग्रीवाय सर्ववागीश्वरेश्वराय सर्ववेदमयाय सर्वविद्यां मे देहि स्वाहा।**'

"(इस मन्त्रमें ३८ अक्षर होनेसे पहलेके दो '**ह्सौमोम्**' प्रथम दलपर तथा '**नमो**' दूसरे दलपर और शेषपर एक-एक अक्षर लिखे जायँगे।) दलोंके सन्धि-स्थलोंमें आदिमें '**ॐ**' तथा अन्तमें '**नमः**' लगाकर केशवादिके चतुर्थी विभक्तियुक्त चौबीस नाममन्त्र (प्रत्येक दलपर पूरा एक मन्त्र) तथा शेष बारह दलोंपर राम-कृष्णके दोनों गायत्री-मन्त्रोंके चार-चार अक्षर एक-एक स्थलपर (पहली गायत्रीके चार-चार अक्षरके बाद दूसरीके चार-चार अक्षर क्रमसे) लिखे। मन्त्र ये हैं—"

ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः, ॐ वामनाय नमः, ॐ श्रीधराय नमः, ॐ हृषीकेशाय नमः, ॐ पद्मनाभाय नमः, ॐ दामोदराय नमः, ॐ संकर्षणाय नमः, ॐ वासुदेवाय नमः, ॐ प्रद्युम्नाय नमः, ॐ अनिरुद्धाय नमः, ॐ पुरुषोत्तमाय नमः, ॐ अधोक्षजाय नमः, ॐ नारसिंहाय नमः, ॐ अच्युताय नमः, ॐ जनार्दनाय नमः, ॐ उपेन्द्राय नमः, ॐ हरये नमः, ॐ श्रीकृष्णाय नमः।

(श्रीरामगायत्री—)

दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्।

(श्रीकृष्णगायत्री—)

दामोदराय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्।

"उसके बाहर प्रणवसे सम्पुटित अंकुश-बीज '**ॐ क्रों ॐ**' मन्त्रसे वृत्त बनाये। उस वृत्तसे बाहर (कुछ अन्तर छोड़कर उसी मन्त्रसे) फिर वृत्त बनाये। दोनों वृत्तोंके मध्यमें बारह कोष्ठ (वृत्त) बनाये, जिनके मध्यमें अन्तर हो। उन कोष्ठों (वृत्तों)-में आदिमें प्रणव तथा अन्तमें '**नमः**' लगाकर चतुर्थी विभक्तियुक्त कौस्तुभ, वनमाला, श्रीवत्स, सुदर्शन, गरुड, पद्म, ध्वज, अनन्त, शार्ङ्ग, गदा, शङ्ख एवं नन्दकके मन्त्र लिखे। मन्त्र इस प्रकार होंगे—

ॐ कौस्तुभाय नमः, ॐ वनमालायै नमः, ॐ श्रीवत्साय नमः, ॐ सुदर्शनाय नमः, ॐ गरुडाय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ ध्वजाय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ शार्ङ्गाय नमः, ॐ गदायै नमः, ॐ शङ्खाय नमः, ॐ नन्दकाय नमः।

"कोष्ठोंके अन्तरालोंमें आदिमें प्रणवयुक्त ये मन्त्र लिखे"—

ॐ विष्वक्सेनाय नमः, ॐ आचक्राय स्वाहा, ॐ विचक्राय स्वाहा, ॐ सुचक्राय स्वाहा, ॐ धीचक्राय स्वाहा, ॐ संचक्राय स्वाहा, ॐ ज्वालाचक्राय स्वाहा, ॐ क्रुद्धोल्काय स्वाहा, ॐ महोल्काय स्वाहा, ॐ वीर्योल्काय स्वाहा, ॐ विद्योल्काय स्वाहा, ॐ सहस्रोल्काय स्वाहा॥ ४०—४२॥

"उसके बाहर प्रणवसे सम्पुटित गरुडपञ्चाक्षर '**ॐ क्षिप ॐ स्वाहा ॐ**'-मन्त्रसे वृत्त बनाये। दोनों वृत्तोंके मध्य भागमें अन्तर छोड़कर बारह वज्र बनाये। उन वज्रोंके कोणोंमें ये मन्त्र लिखे—"

ॐ पद्मनिधये नमः, ॐ महापद्मनिधये नमः, ॐ गरुडनिधये नमः, ॐ शङ्खनिधये नमः, ॐ मकरनिधये नमः, ॐ कच्छपनिधये नमः, ॐ विद्यानिधये नमः, ॐ परमानन्दनिधये नमः, ॐ मोक्षनिधये नमः, ॐ लक्ष्मीनिधये नमः, ॐ ब्रह्मनिधये नमः, ॐ मुकुन्दनिधये नमः।

"उन वज्रोंके बीचके भागोंमें ये मन्त्र लिखे—"

ॐ विद्याकल्पकतरवे नमः, ॐ आनन्दकल्पकतरवे नमः, ॐ ब्रह्मकल्पकतरवे नमः, ॐ मुक्तिकल्पकतरवे नमः, ॐ अमृतकल्पकतरवे नमः, ॐ बोधकल्पकतरवे नमः, ॐ विभूतिकल्पकतरवे नमः, ॐ वैकुण्ठकल्पकतरवे नमः, ॐ वेदकल्पकतरवे नमः, ॐ योगकल्पकतरवे नमः, ॐ यज्ञकल्पकतरवे नमः, ॐ पद्मकल्पकतरवे नमः।

"इस वृत्तको शिवगायत्री तथा परब्रह्म-मन्त्रके अक्षरोंद्वारा वृत्तरूपसे घेरे। (अर्थात् वृत्तके बाहर पहले शिवगायत्री इस प्रकार लिखे कि वृत्तके चारों ओर गोलाईमें आधी दूरके लगभग वह लिखी जाय और आगे '**परब्रह्म**' मन्त्र लिखकर उस गोलेको पूरा कर दे।) मन्त्र ये हैं—

(शिव-गायत्री—)

तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।

(परब्रह्ममन्त्र—)

श्रीमन्नारायणो ज्योतिरात्मा नारायणः परः।
नारायणपरं ब्रह्म नारायण नमोऽस्तु ते॥

"उसके बाहर प्रणवसे सम्पुटित श्रीबीज अर्थात् '**ॐ श्रीमोम्**' मन्त्रसे वृत्त बनाये। वृत्तके बाहर चालीस दलोंका कमल बनाये। उसके दलोंपर व्याहृति एवं शिरोभागसे सम्पुटित वेद-गायत्रीके चारों पाद तथा सूर्याष्टाक्षर-मन्त्र लिखे।" मन्त्र इस प्रकार होंगे—

'**ॐ भूः ॐ भुवः ॐ सुवः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम् ॐ भर्गो देवस्य धीमहि ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ परो रजसे सावदोम् ओमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः सुवरोम्।**'

'**ॐ घृणिः सूर्य आदित्यः।**'

"दलोंके सन्धि-स्थलोंपर सब कहीं प्रणव और श्रीबीजसे सम्पुटित नारायण-बीज अर्थात् '**ॐ श्रीमं श्रीमोम्**' यह मन्त्र लिखे"॥ ४३-४४॥

"उसके बाहर आठ शूलोंसे अङ्कित भू-चक्र बनाये। चक्रके भीतर चारों दिशाओंमें प्रणवसे सम्पुटित '**हंसः सोऽहम्**' मन्त्र और नारायणास्त्र-मन्त्र लिखे। पूरा मन्त्र यह है—'**ॐ हंसः सोऽहमोम्**' '**ॐ नमो नारायणाय हुं फट्**"॥ ४५॥

"उसके बाहर प्रणव-मालासे युक्त वृत्त बनाये। वृत्तके बाहर पचास दलोंका कमल बनाये। उन दलोंमें '**ळ**' को छोड़कर मातृकाके सभी शेष पचास अक्षर (अर्थात् **अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष**) लिखे। उसके दलोंकी सन्धियोंमें प्रणव तथा श्रीबीजसे सम्पुटित राम एवं कृष्णके माला-मन्त्र (क्रमशः ऊपर-नीचे) लिखे।' मन्त्र इस प्रकार होंगे—

(राममाला-मन्त्र—)

'**ॐ श्रीमों नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनायामिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः श्रीमोम्**'।

(श्रीकृष्णमाला-मन्त्र—)

'**ॐ श्रीमों नमः कृष्णाय देवकीपुत्राय वासुदेवाय निगलच्छेदनाय सर्वलोकाधिपतये सर्वजगन्मोहनाय विष्णवे कामितार्थदाय स्वाहा श्रीमोम्**'॥ ४६॥

"उसके बाहर अष्ट शूलोंसे अङ्कित एक भूचक्र और बनाये। उन शूलोंमें प्रणवसम्पुटित महानीलकण्ठ-मन्त्रके अक्षर अर्थात् '**ॐ ॐ नमो नीलकण्ठाय ॐ**' लिखे। शूलोंके अग्रभागमें आदिमें **प्रणव** तथा अन्तमें **नमः** लगाकर चतुर्थी विभक्तियुक्त लोकपालोंके मन्त्र इस प्रकार क्रमशः लिखे—

ओमिन्द्राय नमः, ओमग्नये नमः, ॐ यमाय नमः, ॐ निर्ऋतये नमः, ॐ वरुणाय नमः, ॐ वायवे नमः, ॐ सोमाय नमः, ओमीशानाय नमः॥ ४७॥

"उसके बाहर प्रणव (**ॐ**)-की मालासे युक्त तीन वृत्त बनाये। उसके बाहर चार द्वारोंसे युक्त चार भूपुर बनाये, जिसमें चक्रके चारों कोनोंपर महावज्र शोभित हों। उन वज्रोंमें प्रणव तथा श्रीबीजसे सम्पुटित दो अमृत-बीज—'**ॐ श्रीं वं वं श्रीं ॐ**' लिखे। प्रणव-वृत्तोंके बाहर सबसे बाहरी भूपुर-वीथीमें ये मन्त्र लिखे—'**ओमाधारशक्त्यै नमः, ॐ मूलप्रकृत्यै नमः, ओमादिकूर्माय नमः, ओमनन्ताय नमः, ॐ पृथिव्यै नमः।**' मध्यभूपुर-मार्गमें ये मन्त्र लिखे—'**ॐ क्षीरसमुद्राय नमः, ॐ रत्नद्वीपाय नमः, ॐ रत्नमण्डपाय नमः, ॐ श्वेतच्छत्राय नमः, ॐ कल्पकवृक्षाय नमः, ॐ रत्नसिंहासनाय नमः।**' प्रथम भूपुर-वीथीमें आदिमें **प्रणव** तथा अन्तमें **नमः** लगाकर चतुर्थी विभक्तियुक्त धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य, सत्त्व, रजस्, तमस्, माया, अविद्या, अनन्त एवं पद्मके मन्त्र लिखे। (इन मन्त्रोंके ये रूप होंगे—**ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ओमैश्वर्याय नमः, ओमधर्माय नमः, ओमज्ञानाय नमः, ओमवैराग्याय नमः, ओमनैश्वर्याय नमः, ॐ सत्त्वाय नमः, ॐ रजसे नमः, ॐ तमसे नमः, ॐ मायायै नमः, ओमविद्यायै नमः, ओमनन्ताय नमः, ॐ पद्माय नमः।**) बाहरी वृत्तकी वीथीमें—विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना—इन सबके चतुर्थ्यन्त नाम आदिमें प्रणव और अन्तमें 'नमः' लगाकर लिखे (**ॐ विमलायै नमः, ओमुत्कर्षिण्यै नमः, ॐ ज्ञानायै नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ योगायै नमः, ॐ प्रह्व्यै नमः, ॐ सत्यायै नमः, ओमीशानायै नमः**)। भीतरी वृत्तकी वीथीमें '**ओमनुग्रहायै नमः, ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगयोगपीठात्मने नमः**' लिखे।"

'वृत्तोंके बीचके स्थानोंमें—मन्त्रोंके बीज, प्राण, शक्ति, दृष्टि, वश्य आदि, मन्त्र-यन्त्रोंके नाम, गायत्री, प्राणप्रतिष्ठा, भूतशुद्धि तथा दिक्पालोंके बीज—ये यन्त्रके दस अङ्ग (तथा इनके अतिरिक्त) मूलमन्त्र, मालामन्त्र, कवच तथा दिग्बन्धनके मन्त्र भी दिये जाते हैं।'

'इस प्रकारका यह यन्त्र महायन्त्रमय है। योगके द्वारा जिनका अन्तःकरण ज्ञानसे आलोकित हो उठा है, ऐसे पुरुषोंद्वारा इसे परम मन्त्रोंसे अलङ्कृत किया गया है। षोडशोपचारोंसे पूजे जानेपर तथा जप-हवनादिसे साधित (सिद्ध) होनेपर यह यन्त्र शुद्ध ब्रह्मतेजोमय, सब प्रकारके भयोंसे छुड़ानेवाला, समस्त पापोंका नाशक, सभी अभीष्टोंको देनेवाला तथा सायुज्य मुक्ति देनेवाला है। यह परमवैकुण्ठ-महानारायण-यन्त्र प्रकाशमान है॥ ४८-४९॥

'उस (यन्त्र)-के ऊपर भी आदिनारायणका ध्यान करे। वे निरतिशय आनन्दमयी तेजोराशिके भीतर भलीभाँति विराजमान हैं। शब्दातीत आनन्दमय तेजोराशिस्वरूप, चैतन्य (ज्ञान)-के सारसे आविर्भूत आनन्दमय विग्रहयुक्त, बोधानन्दस्वरूप, निरतिशय सौन्दर्यसिन्धु, तुरीयस्वरूप, तुरीयातीत तथा अद्वैत परमानन्दमय हैं। निरन्तर तुरीयातीत निरतिशय सौन्दर्य एवं आनन्दके पारावार हैं, लावण्य-सरिताकी लहरोंसे उल्लसित तथा विद्युत्की-सी कान्तिसे प्रकाशित हैं, उनका विग्रह दिव्य एवं मङ्गलमय है। वे मूर्तिधारी परम मङ्गलोंसे सेवित हैं। चिदानन्दमय अनन्तकोटि सूर्योंके समान तेजोमय प्रकाशवाले अनन्त भूषणोंसे अलङ्कृत हैं। सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, पद्म, कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग, शार्ङ्गधनुष, मुसल, परिघ आदि चिन्मय अनेकों मूर्तिमान् आयुधोंसे सुसेवित हैं। श्रीवत्स, कौस्तुभ एवं वनमालासे उनका वक्षःस्थल अङ्कित (शोभित) है। ब्रह्मरूप कल्पवनके अमृतमय पुष्पोंकी वर्षासे निरन्तर आनन्दस्वरूप हैं। ब्रह्मानन्दमय रसके असंख्य झरनोंसे अत्यन्त मङ्गलरूप हैं। शेषनागके दस सहस्र फणसमूहोंके विशाल छत्रसे शोभित हैं। उन फणोंके मण्डलमें स्थित अत्यन्त तेजस्वी मणियोंकी ज्योतिसे उनका श्रीविग्रह विशेष देदीप्यमान है तथा शेषनागकी अङ्ग-कान्तिके निर्झरोंसे व्याप्त है। वे निरतिशय ब्रह्मगन्धस्वरूपकी निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्ममय गन्धके विशेष (घन) स्वरूप हैं। अनन्त ब्रह्मगन्ध-मूर्तियोंके समष्टिरूप हैं। अनन्त आनन्दमय तुलसीकी मालाओंसे नित्य नूतनरूप हैं। चिदानन्दमय अनन्त पुष्प-मालाओंसे सुशोभित हैं। तेज-प्रवाहकी तरङ्गोंके अविरल प्रवाहसे प्रकाशमान हैं। निरतिशय अनन्त कान्तिविशेषके आवर्तोंसे सर्वदा सब ओर प्रज्वलित हैं। बोधानन्दमय अनन्त-धूप दीपावलियोंसे अत्यन्त शोभित हैं। निरतिशय आनन्दस्वरूप चँवरोंसे परिसेवित हैं। निरन्तर

निरुपम निरतिशय उत्कट ज्ञानानन्दमय अनन्त फलोंके गुच्छोंसे अलङ्कृत हैं। चिन्मयानन्दरूप दिव्य विमान, छत्र एवं ध्वजसमूहोंसे विशेष शोभित हैं। परम मङ्गलमय अनन्त दिव्य तेजोंसे सर्वदा प्रकाशमान हैं। वाणीसे अतीत अनन्त तेजोराशिके अन्तर्गत, अर्धमात्रास्वरूप, तुरीय, अनाहत ध्वनिरूप, तुरीयातीत, अकथनीय तथा नाद-विन्दु-कला एवं अध्यात्मस्वरूप आदि अनन्त रूपोंमें अवस्थित, निर्गुण, निष्क्रिय, निर्मल, निर्दोष, निरञ्जन, निराकार, दूसरेके आश्रयसे हीन, निरतिशय अद्वैत परमानन्दस्वरूप (उन) आदिनारायणका ध्यान करे'॥ ५०॥

॥ सप्तम अध्याय समाप्त॥ ७॥

अष्टम अध्याय

परम सायुज्य-मुक्तिके स्वरूपका निरूपण

तब पितामह ब्रह्माजी भगवान् महाविष्णुसे पूछते हैं—भगवन्! शुद्ध अद्वैत परमानन्दस्वरूप आप ब्रह्मके (स्वरूपके) विरुद्ध (ये पूर्ववर्णित) वैकुण्ठ, भवन, प्राचीरें, विमान प्रभृति अनन्त वस्तुरूप भेद कैसे हैं?॥ १॥

'तुमने ठीक ही कहा' यह कहकर भगवान् महाविष्णु शङ्काका निवारण करते हैं—'जैसे शुद्ध स्वर्णके कड़े, मुकुट, बाजूबंद आदि भेद होते हैं (जैसे ये आकार-भेद स्वर्णकी एकताके बाधक नहीं), जैसे समुद्रीय जलके बड़ी-छोटी तरङ्गें, फेन, बुलबुले, ओले, नमक, बर्फ आदि अनन्त वस्तुरूप भेद हैं (जैसे ये भेद जलके एकत्वमें बाधक नहीं), जैसे भूमिके पर्वत, वृक्ष, तिनके, झाड़ियाँ, लता आदि अनन्त वस्तुभेद हैं (जैसे ये भेद भूमिके एकत्वके विरोधी नहीं), वैसे ही अद्वैत परमानन्दस्वरूप मुझ परम ब्रह्मका सब कुछ अद्वैतरूप सिद्ध ही है। सब (प्रतीयमान लौकिक-पारलौकिक भेद) मेरे स्वरूप ही हैं। मेरे अतिरिक्त एक अणु भी विद्यमान नहीं (मुझसे भिन्न तुच्छतम भी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है)'॥ २॥

पितामह ब्रह्मा फिर पूछते हैं—'भगवन्! परम वैकुण्ठ ही परम मोक्ष (धाम) है। सर्वत्र (सभी शास्त्रोंमें) परम मोक्ष एक ही सुनायी पड़ता (वर्णित) है। फिर अनन्त वैकुण्ठ तथा अनन्त आनन्द-समुद्रादि अनन्त मूर्तियाँ किस प्रकार हैं?'॥ ३॥

'यह ठीक ही है' कहकर भगवान् महाविष्णु बोले—'एक ही अविद्यापादमें अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड अपने आवरणोंके साथ सुने जाते (शास्त्रोंमें प्रतिपादित) हैं। (जैसे अनन्त ब्रह्माण्डभेद होनेसे अविद्याकी एकतामें बाधा नहीं आती, वैसे ही) एक ही अण्ड (ब्रह्माण्ड)-में बहुत-से लोक, बहुत-से वैकुण्ठ और अनन्त विभूतियाँ भी हैं ही। सभी ब्रह्माण्डोंमें अनन्त लोक हैं और अनन्त वैकुण्ठ हैं, यह सभी (शास्त्रों)-को निश्चितरूपसे मान्य है। (जब एक अविद्यापादकी यह स्थिति है तो) पादत्रयके सम्बन्धमें भी यही बात है, उसमें कहना क्या है। निरतिशय आनन्दका आविर्भाव मोक्ष है, यह मोक्षका लक्षण तीनों पादोंमें है; इसलिये तीनों पाद परम मोक्षधाम हैं। तीनों पाद परम वैकुण्ठ हैं। तीनों पाद परम कैवल्य (धाम) हैं। वहाँ शुद्ध चिदानन्द ब्रह्मके विलासरूप आनन्द, अनन्त परमानन्दमय ऐश्वर्य, अनन्त वैकुण्ठ और अनन्त परमानन्द-समुद्रादि हैं ही'॥ ४॥

"उपासक वहाँ (सातवें अध्यायमें वर्णित श्रीनारायणके समीप) पहुँचकर इस प्रकारके (जैसा स्वरूप उनका वर्णित है) नारायणका ध्यान करके, (उनकी) प्रदक्षिणा तथा (उन्हें) नमस्कार करता है तथा अनेक प्रकारके उपचारोंसे उनकी अर्चना करके निरतिशय अद्वैत परमानन्दस्वरूप हो जाता है। उनके आगे सावधानीसे बैठकर अद्वैतयोगका आश्रय लेता है और सर्वाद्वैत परमानन्दस्वरूप अखण्ड अमित तेजोराशिस्वरूपकी विशेष रूपसे (सम्यक्) भावना करके उपासक स्वयं शुद्ध बोधानन्दमय अमृतस्वरूप एवं निरतिशय आनन्दमय तेजोराशिस्वरूप हो जाता है। तब महावाक्योंके अर्थका बार-बार स्मरण करता हुआ—'ब्रह्म मैं हूँ, मैं ही हूँ, ब्रह्म मैं हूँ, जो भी मैं हूँ, ब्रह्म ही मैं हूँ, मैं ही मैं हूँ, मैं अहंता (भेद-प्रतीति)-का हवन करता हूँ—स्वाहा (वह भस्म हो जाय), मैं ब्रह्म हूँ' इस प्रकारकी भावनाद्वारा, जैसे परम तेजोरूप महानदीका प्रवाह परम तेजोरूप समुद्रमें प्रवेश कर जाय, जैसे परम तेजोमय समुद्रकी तरङ्गें उस परम तेजोमय समुद्रमें प्रवेश कर जायँ, उसी प्रकार सच्चिदानन्दस्वरूप उपासक सर्वरूपसे परिपूर्ण, अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्म मुझ नारायणमें 'मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ, मैं अजन्मा हूँ, मैं परिपूर्ण हूँ' इस

प्रकार (स्वरूपभूत होकर) प्रविष्ट हो जाता है। तब उपासक तरङ्गहीन, अद्वैत, अपार, निरतिशय सच्चिदानन्द-समुद्र हो जाता है॥ ५॥

'जो इस (उपदिष्ट) मार्गके द्वारा भलीभाँति आचरण (उपासना) करता है, वह निश्चय ही नारायण हो जाता है। सभी मुनिगण इसी मार्गसे सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। असंख्यों परम योगी (इसी मार्गसे) सिद्धिको (परम गतिको) पहुँचे हैं'॥ ६॥

तब (उपर्युक्त उपदेशके अनन्तर) शिष्य गुरुसे पूछता है—भगवन्! सालम्ब एवं निरालम्बयोग किस प्रकारके हैं॥ ७॥

(गुरुदेव बतलाते हैं—) 'सालम्बयोग वह है, जिसमें सब प्रकारके कर्मोंसे दूर रहकर कर-चरण आदि अङ्गोंवाली मूर्तिविशेष अथवा मण्डल (ज्योति) आदिका (ध्यान-उपासनादिके लिये) आलम्बन किया जाय; यही सालम्बयोग है।'

'निरालम्बयोग वह है, जिसमें समस्त नाम, रूप, कर्मको अत्यन्त दूरसे छोड़कर, समस्त कामनादि अन्त:करणकी वृत्तियोंके साक्षीरूपसे, उस (अन्त:करणकी किसी भी वृत्ति)-के आलम्बनसे शून्य रहकर भावना की जाय। यही (भावनाहीन स्थितिमें स्थित होना ही) निरालम्बयोग है'॥ ८॥

'तब तो (जब निरालम्बयोग इतना दुरूह है) निरालम्बयोगका अधिकारी किस प्रकारका होता है?'॥ ९॥

'जो पुरुष अमानित्व आदि (ज्ञानके) लक्षणोंसे युक्त हो, उसीको निरालम्बयोगका अधिकारी बनाना (मानना) चाहिये। ऐसा अधिकारी कोई बिरला ही है। इसलिये सभी अधिकारी-अनधिकारियोंके लिये भक्तियोग ही श्रेष्ठ कहा जाता है। भक्तियोग उपद्रव (विघ्न)-रहित है। भक्तियोगसे मुक्ति प्राप्त होती है। भक्तोंको बिना परिश्रमके अविलम्ब ही तत्त्वज्ञान हो जाता है'॥ १०-११॥

'वह (अनायास अविलम्ब तत्त्वज्ञान) कैसे होता है?' इस शंकाके उत्तरमें बतलाते हैं—'भक्तवत्सल भगवान् स्वयं ही मोक्षके सभी विघ्नोंसे सभी भक्तिनिष्ठ लोगों (भक्तों)-की रक्षा करते हैं। (उनके) समस्त अभीष्ट प्रदान करते हैं। मोक्ष दिलवाते हैं। (भक्त स्वत: मोक्ष नहीं चाहता। भगवान् उसे अपनी ओरसे मोक्ष प्रदान करते हैं, इसीसे दिलवाते हैं—बरबस देते हैं, यह कहा गया।) विष्णु-भक्तिके बिना ब्रह्मादि समस्त (देवताओं)-का भी करोड़ों कल्पोंमें भी मोक्ष नहीं होता। क्योंकि कारणके बिना कार्य प्रकट नहीं होता, अत: भक्ति (जो कारण है, उस)-के बिना (कार्य) ब्रह्मज्ञान कभी उत्पन्न नहीं होता। इसलिये तुम भी समस्त उपायोंको छोड़कर भक्तिका आश्रय लो। भक्तिनिष्ठ बनो। भक्तिनिष्ठ बनो। भक्तिके द्वारा सभी सिद्धियाँ सिद्ध (प्राप्त) होती हैं। भक्तिके द्वारा कुछ भी असाध्य नहीं है'॥ १२॥

"इस प्रकार गुरुके उपदेशको सुनकर, परम तत्त्वके सभी रहस्योंको जानकर, सम्पूर्ण संशयोंको दूर करके 'शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लूँगा' ऐसा निश्चय करके, तब शिष्य उठा। उठकर गुरुकी प्रदक्षिणा एवं उन्हें नमस्कार करके, गुरुकी पूजा करके, गुरुकी ही आज्ञासे उसने क्रमश: भक्तिनिष्ठ होकर परिपक्व भक्तिके आधिक्यसे परिपक्व विज्ञान प्राप्त किया। उस (परिपक्व विज्ञान)-से बिना परिश्रमके ही शिष्य शीघ्र ही साक्षात् नारायणस्वरूप हो गया"॥ १३॥

(यह आख्यान सुनाकर) तब भगवान् महाविष्णु चतुर्मुख ब्रह्माजीकी ओर देखकर बोले—'ब्रह्माजी! मैंने आपसे परम तत्त्वका समस्त रहस्य कह दिया। उसके स्मरणमात्रसे मोक्ष हो जाता है। उसके अनुष्ठानसे सम्पूर्ण अज्ञात ज्ञात हो जाता है। जिसके स्वरूपको जान लेनेसे अज्ञात भी ज्ञात हो जाता है, वह सम्पूर्ण परमतत्त्व-रहस्य मैंने बतला दिया'॥ १४॥

'गुरु कौन है?' ब्रह्माजीके इस प्रश्नके उत्तरमें भगवान् बतलाते हैं—'गुरु साक्षात् आदिनारायण पुरुष हैं। वह आदिनारायण मैं ही हूँ। इसलिये एकमात्र मेरी शरणमें आओ। मेरी भक्तिमें निष्ठावान् होओ। मेरी उपासना करो। इस प्रकार मुझे ही प्राप्त करोगे। मेरे अतिरिक्त सब कुछ बाधित (अतत्त्व) है। मुझसे अतिरिक्त अबाधित (सत्ता रखनेवाला) कुछ भी नहीं है। अद्वितीय निरतिशय आनन्द मैं ही हूँ। सब प्रकार परिपूर्ण मैं ही हूँ, मैं ही सबका आश्रय हूँ। वाणीका अविषय निराकार परब्रह्मस्वरूप मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न अणुमात्र भी नहीं है'॥ १५॥

इस प्रकार भगवान् महाविष्णुके इस परम उपदेशका लाभ करके पितामह ब्रह्माजीने परम आनन्द प्राप्त किया। तदनन्तर भगवान् विष्णुके कर-स्पर्शसे दिव्यज्ञान प्राप्त

करके पितामह उठे और उठकर उन्होंने प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके विविध उपचारोंसे भगवान् महाविष्णुकी भलीभाँति पूजा की। फिर अञ्जलि बाँधकर, विनयपूर्वक समीप जाकर बोले—'भगवन्! मुझे भक्तिनिष्ठा प्रदान करें! हे कृपानिधे! मैं आपसे अभिन्न हूँ, मेरा सब प्रकार पालन करें'॥ १६-१७॥

'वही हो, साधु! साधु!' इस प्रकार (ब्रह्माजीकी) भलीभाँति प्रशंसा करते हुए भगवान् महाविष्णु बोले—'मेरा उपासक सबसे उत्कृष्ट हो जाता है। मेरी उपासनासे सब मङ्गल होते हैं। मेरी उपासनासे वह सबको विजय कर लेता है। मेरा उपासक सबके द्वारा वन्दनीय होता है। मेरे उपासकके लिये असाध्य कुछ नहीं है। सम्पूर्ण बन्धन पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। सदाचारीकी जैसे सब लोग सेवा करते हैं, वैसे ही समस्त देवता उसकी सेवा करते हैं। महाश्रेय भी (उसकी) सेवा करते हैं। मेरा उपासक उस (उपासना)-से निरतिशय अद्वैत परमानन्दस्वरूप परब्रह्म हो जाता है। जो भी मुमुक्षु इस मार्गसे सम्यक् आचरण करता है, वह परमानन्दस्वरूप परब्रह्म हो जाता है॥ १८॥

'जो कोई (इस) परमतत्त्व-रहस्य आथर्वण महानारायणोपनिषद्का अध्ययन करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह जान-बूझकर तथा अनजानमें किये पापोंसे मुक्त हो जाता है। महापापोंसे पवित्र हो जाता है। छिपाकर किये गये, प्रकटरूपसे किये गये, बहुत दिनोंतक अधिक रूपमें किये गये सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। वह सभी लोकोंको जीत लेता है। उसकी सभी मन्त्रोंके जपमें निष्ठा हो जाती है। वह समस्त वेदान्तके रहस्यको प्राप्त करके परमार्थका ज्ञाता हो जाता है। वह सम्पूर्ण भोगोंका भोक्ता (उन भोगोंके द्वारा मिलनेवाले आनन्दसे युक्त) हो जाता है। उसे सभी योगोंका ज्ञान हो जाता है। वह समस्त जगत्का परिपालक हो जाता है। वह अद्वैत-परमानन्दस्वरूप परब्रह्म हो जाता है॥ १९॥

'यह परमतत्त्व-रहस्य गुरुभक्तिविहीनको नहीं बतलाना चाहिये। जो सुनना न चाहता हो, उसे भी नहीं बतलाना चाहिये; न तपस्याविहीन नास्तिकको और न मेरी (भगवान्की) भक्तिसे रहित दाम्भिकको बतलाना चाहिये। मत्सरयुक्त पुरुषको नहीं बतलाना चाहिये। मेरी निन्दामें लगे (भगवान्में दोषदृष्टि करनेवाले) कृतघ्नको भी नहीं बतलाना चाहिये'॥ २०॥

'जो यह परम रहस्य मेरे (भगवान्के) भक्तको बतलावेगा, वह मेरी भक्तिमें निष्ठावान् होकर मुझे (भगवान्को) ही प्राप्त करेगा। जो हम दोनों (ब्रह्माजी एवं भगवान् विष्णु)-के इस संवादका अध्ययन करेगा, वह मनुष्य ब्रह्मनिष्ठ हो जायगा। जो श्रद्धावान् तथा असूया (दोषदृष्टि)-रहित होकर सुनेगा या हम दोनोंके इस संवादको पढ़ेगा, वह पुरुष मेरे सायुज्यको प्राप्त करेगा'॥ २१—२३॥

(इतना कहकर) तब महाविष्णु अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजी अपने स्थान (ब्रह्मलोक)-को चले गये॥ २४॥

॥ अष्टम अध्याय समाप्त॥ ८॥

॥ उत्तरकाण्ड समाप्त॥

॥ अथर्ववेदीय त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!